स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

मई, 2020
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग, प्रभारी वि.सा.प्र.

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन, विधि
संकाय लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

ISSN 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2020 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

मई, 2020 अंक - 5

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय
संपादक
अविनाश शुक्ला

विधि साहित्य
प्रकाशन

(2020) 1 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on
Website ⟹ https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

मैं, इस संपादकीय के माध्यम से आपका ध्यान माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा **मयूर फार्म प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **आलोक टंडन, अध्यक्ष, न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण और अन्य** (2020) 1 सि. नि. प. 591 वाले मामले में दिए गए महत्वपूर्ण निर्णय की ओर आकर्षित करना चाहता हूं जिसके द्वारा माननीय न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यदि निर्णीत ऋणी द्वारा डिक्री का समाधान कर दिया गया है, तो चाहे वह समाधान डिक्रीदार की संतुष्टि के अनुसार न हो, तो भी निर्णीत ऋणी को न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के उपबंधों के अंतर्गत दंडित नहीं किया जा सकता । न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 के उपबंधों के अंतर्गत निर्णीत ऋणी को दंडित किए जाने के प्रयोजनार्थ यह आवश्यक है कि डिक्री के विरुद्ध अवज्ञा जानबूझकर और आशयपूर्वक होनी चाहिए । यदि डिक्री के अतिलंघन का मामला है तो यह आवश्यक नहीं होगा कि न्यायालय अवमान अधिनियम के अंतर्गत अवमान अधिकारिता का अवलंब लिया जाए और उसका प्रयोग किया जाए । डिक्री के निष्पादन के लिए न्यायालय अवमान अधिनियम के उपबंधों का आश्रय नहीं लिया जा सकता और डिक्री का निष्पादन सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 21 में समाविष्ट उपबंधों का पालन करते हुए ही किया जाना चाहिए ।

पत्रिका में समायोजित सामग्री और गुणवत्ता के संबंध में सभी पाठकों के विचार अपेक्षित हैं । अगली पत्रिका के संपादन के समय उनके विचारों पर ध्यान दिया जाएगा ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

मई, 2020

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अनिल कुमार **बनाम** प्रकाश विज	719
अमित कुमार अग्रवाल **बनाम** मां शारदा एंड कंपनी और एक अन्य	644
जे. बी. कंस्ट्रक्शन कंपनी, छत्तीसगढ़ **बनाम** दक्षिण पूर्व केंद्रीय रेलवे	666
नाहीद परबीन निशात (श्रीमती) **बनाम** असम राज्य और अन्य	658
पंचघाटी कंस्ट्रक्शन **बनाम** उत्तराखंड राज्य और अन्य	616
प्रो. पी. एल. विश्वेश्वर राव **बनाम** तेलंगाना राज्य और अन्य	681
मयूर फार्म प्राइवेट लिमिटेड **बनाम** आलोक टंडन, अध्यक्ष, न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण और अन्य	591
रामवीर **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	610
रुचि सक्सेना **बनाम** सुनील सक्सेना	625
शहनवाज अली **बनाम** उत्तराखंड राज्य और अन्य	621
संदीप सिंह सागवान **बनाम** रितु **उर्फ** रीधिमा	711
सलीमबीन बसीरभाई हाडी **बनाम** मुसन्नभाई रहीमभाई भंडारी	636

संसद् के अधिनियम

भविष्य निधि अधिनियम, 1925 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ 1 – 23

पृष्ठ संख्या

असम मुस्लिम विवाह और विवाह-विच्छेद रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1935 (1935 का 9)

– धारा 4 और 9 – पति द्वारा एहसन तलाक प्रथा के अंतर्गत विवाह और विवाह-विच्छेद रजिस्ट्रार को प्रथम तलाक की इत्तिला दिया जाना – रजिस्ट्रार द्वारा अपनी मुहर के अधीन प्रथम तलाक की इत्तिला को पुलिस थाना के माध्यम से पत्नी पर तामील कराया जाना – पत्नी द्वारा प्रथम तलाक की इत्तिला को चुनौती दिया जाना – अधिनियम की धारा 9 रजिस्ट्रार को विवाह-विच्छेद के पक्षों को तलाक प्रमाणपत्र जारी किए जाने के लिए सशक्त नहीं करती – रजिस्ट्रार द्वारा प्रथम तलाक का आदेश जारी किया जाना आरंभ से ही अकृत और बिना अधिकारातीत है ।

नाहीद परबीन निशात (श्रीमती) बनाम **असम राज्य और अन्य** 658

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 (1955 का 10)

– धारा 3 – उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति का रद्दकरण – शासनादेश के खंड 9 के अनुसार उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति के रद्दकरण के पूर्व सक्षम प्राधिकारी द्वारा जांच अपेक्षित थी – अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कोई भी सामग्री उपलब्ध नहीं है कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा जांच की गई – अनुज्ञप्ति का रद्दकरण अनुचित है ।

शहनवाज अली बनाम **उत्तराखंड राज्य और अन्य** 621

– धारा 3 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1908 की धारा 5] – उचित कीमत की दुकान की अनुज्ञप्ति का

पृष्ठ संख्या

रद्दकरण दांडिक मामले में अनुज्ञप्तिधारी की दोषमुक्ति पर रद्दकरण का प्रभाव – अनुज्ञप्तिधारी द्वारा रद्दकरण के आदेश के विरुद्ध परिसीमा के भीतर कोई अपील फाइल न किया जाना और दांडिक मामले में दोषमुक्त हो जाने पर दोषमुक्ति आदेश का लाभ लेते हुए, विलंबित अपील फाइल किया जाना – अनुज्ञप्ति का रद्दकरण उचित माना जाएगा और अनुज्ञप्तिधारी दांडिक मामले में पारित दोषमुक्ति आदेश का लाभ अनुज्ञप्ति के रद्दकरण आदेश के विरुद्ध विलंबित अपील फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ नहीं ले सकता ।

रामवीर बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 610

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 (1971 का 70)

– धारा 2ख – निर्णीत ऋणी द्वारा जानबूझकर और आशयपूर्वक डिक्री की अवज्ञा किया जाना – यदि निर्णीत ऋणी ने डिक्री का समाधान कर दिया है, चाहे वह समाधान आवेदक की संतुष्टि के अनुसार न हो, तो भी निर्णीत ऋणी को दंडित नहीं किया जा सकता – डिक्री के विरुद्ध अवज्ञा जानबूझकर और आशयपूर्वक होनी चाहिए – यदि डिक्री अतिलंघन का मामला है, तो यह समीचीन नहीं होगा कि अवमान अधिकारिता का अवलंब लिया जाए और उसका प्रयोग किया जाए – डिक्री की अवज्ञा या अतिलंघन के लिए न्यायालय अवमान अधिनियम के अंतर्गत दंड डिक्री के निष्पादन का मार्ग नहीं हो सकता ।

मयूर फार्म प्राइवेट लिमिटेड बनाम **आलोक टंडन, अध्यक्ष, न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण और अन्य** 591

पृष्ठ संख्या

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26)

– धारा 15, धारा 2(1)(ङ) और 11 – माध्यस्थम् की आज्ञा की समाप्ति के लिए आवेदन आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय के समक्ष फाइल किया जा सकता है और उन उच्च न्यायालयों के समक्ष भी फाइल किया जा सकता है जिनको मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता प्राप्त है – छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय को आरंभिक सिविल न्यायालय की अधिकारिता प्राप्त नहीं है, इसलिए यह उच्च न्यायालय ऐसे आवेदन पर विचार नहीं कर सकता – पक्षों को माध्यस्थम् की आज्ञा की समाप्ति के अनुतोष के लिए आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय की शरण में जाना चाहिए ।

जे. बी. कंस्ट्रक्शन कंपनी, छत्तीसगढ़ बनाम **दक्षिण पूर्व केंद्रीय रेलवे** 666

– धारा 21 – माध्यस्थम् कार्यवाही के आरंभ की सूचना – जब तक कि पक्षों के मध्य अन्यथा रूप से सहमति न हो जाए, धारा 21 के अधीन सूचना का जारी किया जाना माध्यस्थम् कार्यवाही आरंभ किए जाने के प्रयोजनार्थ आवश्यक है – उक्त उपबंध के अननुपालन का प्रभाव माध्यस्थम् कार्यवाही और उस कार्यवाही के अधीन पारित पंचाट का अविधिमान्यकरण होगा ।

अमित कुमार अग्रवाल बनाम **मां शारदा एंड कंपनी और एक अन्य** 644

– धारा 34, 16(2) और 8 – मध्यस्थ की अधिकारिता पर आक्षेप के आधार पर माध्यस्थम् पंचाट

इस अभिवाक् के आधार पर अपास्त किया जाना कि भाड़ाक्रय करार के अंतर्गत भाड़े पर लेने वाले द्वारा उठाए गए आक्षेप पक्षों के मध्य सिविल वाद के लंबन के संदर्भ में थे, इसलिए वे आक्षेप धारा 8 के अंतर्गत आते हैं, न कि धारा 16(2) के अंतर्गत – चूंकि 1996 का अधिनियम विशेष विधायन है, इसलिए इसके अंतर्गत उठाए गए आक्षेपों की तुलना सिविल वाद में अधिकारिता के संबंध में उठाए गए नियमित आक्षेपों से नहीं की जा सकती – धारा 16(2) के अधीन प्रतिरक्षा का लिखित कथन फाइल किए जाने के पूर्व आरंभिक प्रक्रम पर उठाए गए आक्षेप पर विचार किया जा सकता है ।

अमित कुमार अग्रवाल बनाम **मां शारदा एंड कंपनी और एक अन्य** 644

मोटरयान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) [2019 के अधिनियम संख्या 32 द्वारा प्रतिस्थापित]

– धारा 102, 99, 104 और 67 – निजी प्रचालकों द्वारा किराए पर वाहन चलाने की अनुज्ञा प्रदान किए जाने के बाबत राज्य सरकार की शक्तियां – राज्य यातायात निगम के अतिरिक्त किसी अन्य अतित्व को स्थायी अनुज्ञा प्रदान किए जाने के संबंध में राज्य सरकार पर लागू आंशिक परिसीमा – यह तथ्य कि राज्य सरकार को किसी भी योजना को उपांतरित करने की शक्ति प्राप्त है, यदि ऐसा किया जाना आवश्यक है और जनहित में है, से यह उपदर्शित होता है कि – राज्य को अधिनियम के अधीन योजना विरचित करने की न केवल व्यापक शक्ति प्राप्त है, बल्कि निजी प्रचालकों

पृष्ठ संख्या

को अनुज्ञा प्रदान करने की शक्ति भी प्राप्त है ।

प्रो. पी. एल. विश्वेश्वर राव बनाम **तेलंगाना राज्य और अन्य** 681

– धारा 102 और 99 [संविधान, 1950 का अनुच्छेद 31-ख] – निजी प्रचालकों को वाहन चलाने की अनुज्ञा प्रदान किए जाने की संवैधानिक विधिमान्यता – इस आधार पर कि बसों का प्रचालन निजी प्रचालकों द्वारा किए जाने के प्रयोजनार्थ विरचित योजना अधिनियम के अध्याय VI की अतिक्रमणकारी है और अध्याय VI संविधान के अनुच्छेद 31-ख के अधीन संरक्षित है और अध्याय VI के उपबंधों को संविधान के भाग 3 के अतिक्रमणकारी होने के आधार पर चुनौती न दिया जाना – बसों के निजीकरण की योजना विधिमान्य है ।

प्रो. पी. एल. विश्वेश्वर राव बनाम **तेलंगाना राज्य और अन्य** 681

– धारा 102 और 99 [संविधान, 1950 का अनुच्छेद 31-ख और अनुसूची 9] – संविधान की अनुसूची 9 की मद संख्या 125 में मोटरयान अधिनियम के अध्याय VI का उल्लेख नहीं है – अध्याय VI के किसी भी उपबंध को इस बाबत चुनौती नहीं दी गई कि वह संविधान के भाग 3 का अतिक्रमणकारी है – बसों का प्रचालन निजी प्रचालकों द्वारा किए जाने की योजना को विधिमान्य अभिनिर्धारित किया जाना उचित है ।

प्रो. पी. एल. विश्वेश्वर राव बनाम **तेलंगाना राज्य और अन्य** 681

पृष्ठ संख्या

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8)

– धारा 25 [हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 13] – पिता द्वारा अवयस्क बच्चे की अभिरक्षा का दावा – बच्चे द्वारा अपनी माता के साथ रहने की इच्छा व्यक्त किया जाना – यदि माता सुशिक्षित और कार्यरत है और बच्चे को उचित शिक्षा उपलब्ध कराने में समर्थ है, तो पिता संरक्षण प्रदान किए जाने का हकदार नहीं है – निचले न्यायालय द्वारा बच्चे की अभिरक्षा प्राप्त करने के पिता के अनुरोध को नामंजूर किया जाना न्यायत: सही था ।

संदीप सिंह सागवान बनाम **रितु** उर्फ **रीधिमा** 711

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14 – तकनीकी बोली का इस आधार पर अस्वीकार किया जाना कि याची ने गलत नाम में प्रतिभूति का डिमांड ड्राफ्ट प्रस्तुत किया – बोली दस्तावेज में इस बाबत स्पष्टता का अभाव होना कि बैंक ड्राफ्ट किस नाम में आहरित किया जाना था – इस तथ्य पर विचार करते हुए कि बोली दस्तावेज में स्पष्टता और असंदिग्धता का अभाव था, तकनीकी बोली का रद्दकरण और उसको अपास्त किया जाना उचित था ।

पंचघाटी कंस्ट्रक्शन बनाम **उत्तराखंड राज्य और अन्य** 616

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 26, नियम 9 – स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति के लिए आवेदन – यह अभिनिश्चित किए जाने

के प्रयोजनार्थ कि क्या प्रतिवादियों द्वारा वादग्रस्त भूमि पर अतिक्रमण किया गया, वादग्रस्त भूमि के सीमांकन के लिए स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति की ईप्सा किया जाना – वादी द्वारा अभिलेख पर यह दर्शित न किया जाना कि उसने विवादित भूमि के सीमांकन के लिए राजस्व प्राधिकारियों की शरण ली और राजस्व प्राधिकारियों ने कोई कार्रवाई नहीं की – वादी द्वारा अतिक्रमण को साबित भी नहीं किया जाना – न्यायालय मात्र साक्ष्य एकत्रित करने के प्रयोजनार्थ स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति नहीं कर सकता – स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति के लिए प्रस्तुत आवदेन अस्वीकार किया जाना उचित है ।

अनिल कुमार बनाम **प्रकाश विज** 719

– आदेश 39, नियम 1 और 2 – स्थायी व्यादेश की विधिमान्यता – स्थायी व्यादेश प्रदान करने से इनकार – याची द्वारा प्रतिवादियों द्वारा उसकी संपत्ति के सामने मात्र 10 से 12 फीट चौड़े मार्ग के दूसरी तरफ किए जा रहे दुकानों के वाणिज्यिक निर्माण के प्रयोजनार्थ दुकानदारों के लिए पर्याप्त पार्किंग स्थान की व्यवस्था न किए जाने के आधार पर व्यादेश की ईप्सा किया जाना – वादी द्वारा दावे के समर्थन में पड़ोसियों के शपथपत्र या वादग्रस्त संपत्ति के स्वामित्व के संबंध में कोई दस्तावेज प्रस्तुत न किया जाना – व्यादेश प्रदान नहीं किया जा सकता ।

सलीमबीन बसीरभाई हाडी बनाम **मुसन्नभाई रहीमभाई भंडारी** 636

पृष्ठ संख्या

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 और 35क] – विवाह-विच्छेद की डिक्री के विरुद्ध अपील – पत्नी का अभिवाक् कि पति ने कपटपूर्वक उससे बहाना करके कि वह उसके नाम में कतिपय संपत्ति का अंतरण कर रहा है, हस्ताक्षर अभिप्राप्त कर लिए और विवाह-विच्छेद की याचिका फाइल कर दी – जब पत्नी न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित थी, उसने अपना परीक्षण शपथपत्र के माध्यम से फाइल किया और उसी दिन प्रतिपरीक्षा के लिए भी उपस्थित थी, तो उसका उपरोक्त अभिवाक् आधारहीन और परेशान करने वाला है – विवाह-विच्छेद की डिक्री न्यायत: पारित की गई और अपील 25,000/- रुपए की लागत अधिरोपित करते हुए खारिज कर दी गई ।

रुचि सक्सेना बनाम **सुनील सक्सेना** 625

(2020) 1 सि. नि. प. 591 इलाहाबाद

मयूर फार्म प्राइवेट लिमिटेड

बनाम

आलोक टंडन, अध्यक्ष, न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण और अन्य

(2019 का सिविल प्रकीर्ण अवमान आवेदन संख्या 5162)

तारीख 17 जनवरी, 2020

न्यायमूर्ति सुनीत कुमार

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 (1971 का 70) – धारा 2ख – निर्णीत ऋणी द्वारा जानबूझकर और आशयपूर्वक डिक्री की अवज्ञा किया जाना – यदि निर्णीत ऋणी ने डिक्री का समाधान कर दिया है, चाहे वह समाधान आवेदक की संतुष्टि के अनुसार न हो, तो भी निर्णीत ऋणी को दंडित नहीं किया जा सकता – डिक्री के विरुद्ध अवज्ञा जानबूझकर और आशयपूर्वक होनी चाहिए – यदि डिक्री अतिलंघन का मामला है, तो यह समीचीन नहीं होगा कि अवमान अधिकारिता का अवलंब लिया जाए और उसका प्रयोग किया जाए – डिक्री की अवज्ञा या अतिलंघन के लिए न्यायालय अवमान अधिनियम के अंतर्गत दंड डिक्री के निष्पादन का मार्ग नहीं हो सकता ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि प्रस्तुत अवमान याचिका नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण (नोएडा) के अध्यक्ष/मुख्य कार्यपालक अधिकारी को सम्मिलित करते हुए विपक्षियों को जगदीश चंद्र और अन्य बनाम नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण, नोएडा (2007 की प्रथम अपील संख्या 412) वाले मामले में फाइल की गई प्रथम अपील में तारीख 14 दिसंबर, 2007 को पारित आदेश की जानबूझकर अवज्ञा किए जाने के कारण दंडित किए जाने के प्रयोजनार्थ वर्ष 1971 के न्यायालय अवमान अधिनियम के अधीन फाइल की गई । स्टाम्प रिपोर्टर ने सूचित

किया कि अपीली न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को विपक्षियों के संज्ञान में तारीख 7 फरवरी, 2014 को लाया गया था, तद्नुसार अवमान याचिका 6 वर्ष और 65 दिन व्यतीत हो जाने के पश्चात् फाइल की गई । तत्पश्चात् विपक्षी संख्या 1 उपस्थित हुआ और उसने शपथपत्र फाइल किया, जिसमें अन्य बातों के साथ यह अभिकथित किया गया कि अवमान याचिका चूकों और विलंब के कारण बाधित है, और साथ ही अपीली न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री भी वर्ष 1971 के न्यायालय अवमान अधिनियम के अंतर्गत निष्पादन किए जाने योग्य नहीं है । अवमान याचिका पोषणीय नहीं है क्योंकि आवेदक/अपीलार्थी को यह अनुतोष उपलब्ध है कि वह निष्पादन कार्यवाहियों का आश्रय लेने के लिए सिविल न्यायालय की शरण में जाए । अवमान याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – किसी ऐसे मामले में जहां अपवादिक परिस्थितियां विद्यमान हों, न्यायालय वचनबंध/निर्णय/आदेश या डिक्री के अतिक्रमण/भंग के लिए सिविल अवमान के मामले में लागू होने वाले उपबंधों का आश्रय ले सकता है । तथापि, न्यायालय को ऐसे किसी भी आवेदन पर कोई अंतिम आदेश पारित किए जाने के पूर्व स्वयं को इस बाबत अवश्य संतुष्ट करना चाहिए कि ऐसे किसी निर्णय, डिक्री, निदेश या आदेश का अतिक्रमण हुआ है और इस प्रकार की कोई भी अवज्ञा जानबूझकर और आशयपूर्वक की गई है । यद्यपि किसी डिक्री के निष्पादन मामले में निष्पादन न्यायालय को इस बाबत चिंतित नहीं होना चाहिए कि क्या डिक्री की अवज्ञा जानबूझकर की गई है या नहीं और न्यायालय उस डिक्री को निष्पादित करने के लिए बाध्य है, चाहे इसके परिणाम कुछ भी हों । किसी अवमान कार्यवाही में तथाकथित अवमानकर्ता न्यायालय को इस बाबत संतुष्ट कर सकता है कि अवज्ञा किन्हीं विवशकारी परिस्थितियोंवश हो गई थी और ऐसी स्थिति में उसको दंड प्रदान नहीं किया जा सकता । अवमान कार्यवाही अर्ध दांडिक प्रकृति की कार्यवाही होती है और इसलिए जिस स्तरमान के सबूत अपेक्षित होते हैं, वे अन्य दांडिक मामले के समान ही होते हैं । अभिकथित अवमानकर्ता उन समस्त रक्षोपायों/अधिकारों के संरक्षण के हकदार हैं जो दांडिक न्यायशास्त्र में उपबंधित हैं, जिनमें संदेह का लाभ भी सम्मिलित है । किसी पक्ष द्वारा

आशयपूर्वक न्याय के प्रशासन में स्पष्ट रूप से अवरोध सृजित किए जाने का मामला उपस्थित होना चाहिए जिससे कि मामले को उक्त उपबंध की परिधि के भीतर लाया जा सके । मामला मात्र अनुमानों पर आधारित नहीं होना चाहिए । हमारे समक्ष उपस्थित मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए आवेदकों द्वारा इस बात को विवादित नहीं किया गया है कि न्यायालय द्वारा विनिर्धारित दर पर प्रतिकर और उस प्रतिकर पर ब्याज का संदाय नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा नहीं किया गया है । पक्षों के मध्य विवाद्यक यह है कि क्या आवेदक भूमि अधिग्रहण अधिनियम के अधीन उपबंधित कानूनी ब्याज के अतिरिक्त 10 प्रतिशत की दर से ब्याज प्राप्त करने का हकदार है । नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण का सुस्पष्ट पक्षकथन यह है कि उन्होंने डिक्री को संतुष्ट कर दिया है और किसी अन्य रकम का संदाय अपेक्षित नहीं है । साथ ही उनके द्वारा यह दलील भी दी गई है कि उन्होंने ब्याज के बाबत अधिक रकम का संदाय कर दिया है । मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए जो प्रश्न उद्भूत होता है, यह है कि क्या नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा अभिकथित अवज्ञा आशयपूर्वक और जानबूझकर दंड को आमंत्रित करते हुए की गई है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि नवीन ओखला औद्योगिक प्राधिकरण ने डिक्री को संतुष्ट कर दिया है, यद्यपि वह संतुष्टि आवेदक की संतुष्टि के अनुरूप नहीं है, फिर भी नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण को दंडित नहीं किया जा सकता । यदि कोई अवज्ञा कारित की गई, तो वह आशयपूर्वक और जानबूझकर कारित नहीं की गई । यह मामला डिक्री या डिक्री के अंतर्गत आदेश के अतिलंघन से संबंधित नहीं है, अत: सारत:, यह समीचीन नहीं होगा कि डिक्री निष्पादन के लिए और उसके उपाय के रूप में अवमान अधिकारिता का अवलंब लिया जाए और उसका प्रयोग किया जाए । आवेदक को यह अनुतोष उपलब्ध है कि वह निष्पादन कार्यवाही का आशय ले, न कि अवमान कार्यवाही का । किसी डिक्री की अवज्ञा/अतिलंघन के लिए न्यायालय अवमान अधिनियम के अंतर्गत दंड डिक्री का निष्पादन नहीं हो सकता । किसी अवमान न्यायालय की अधिकारिता किसी निष्पादन न्यायालय की अधिकारिता के मुकाबले पृथक् और भिन्न होती है । (पैरा 23, 24, 25 और 26)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	(2016) 15 एस. सी. सी. 164 : **ज्ञानी चंद्र** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	18
[2012]	(2012) 4 एस. सी. सी. 360 : **कवंर सिंह सैनी** बनाम **दिल्ली उच्च न्यायालय** ;	20
[2010]	(2010) 12 एस. सी. सी. 770 : **दिनेश कुमार गुप्ता** बनाम **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** ;	16
[2008]	(2008) 10 एस. सी. सी. 795 : **महेन्द्र कुमार गांधी** बनाम **मोहम्मद ताजेर अली और अन्य** ;	22
[2008]	(2008) 10 एस. सी. सी. 186 : **शखान गणेश अरावनदेकर और एक अन्य** बनाम **महादेव विनायक माथकर और अन्य** ;	22
[2006]	ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1883 : **रमानारंग** बनाम **रमेश नागरंग और एक अन्य** ;	23
[2004]	(2004) 1 एस. सी. सी. 360 : **बैंक ऑफ बड़ोदा** बनाम **सदरुद्दीन हसनदया** ;	21
[2003]	(2003) 11 एस. सी. सी. 1 : **अशोक पेपर कामगार यूनियन** बनाम **धरम ढ़ोडा और अन्य** ;	14
[1994]	(1994) 6 एस. सी. सी. 332 : **नियाज मोहम्मद और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य** ;	19, 23

[1990] (1990) 4 एस. सी. सी. 737 :
जीवानी कुमारी पारिख बनाम **सत्यब्रत चक्रवर्ती** ; 18

[1981] (1981) 2 एस. सी. सी. 277 :
दुष्यंत सोमल बनाम **सुषमा सोमल** ; 19

[1969] ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 189 :
देवब्रत बंधोपाध्याय और अन्य बनाम
पश्चिमी बंगाल राज्य और एक अन्य ; 24

[1961] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 1367 :
बी. के. कार बनाम **उड़ीसा उच्च न्यायालय** ; 18

[1957] ए. आई. आर. 1957 पटना 528 :
एन. बक्शी बनाम **ओ. के. घोष** ; 18

[1954] ए. आई. आर. 1954 पटना 513 :
बिहार राज्य बनाम **रानी सोनाबती कुमारी** । 18

प्रकीर्ण (सिविल) अधिकारिता : 2019 का सिविल प्रकीर्ण अवमान आवेदन संख्या 5162.

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 की धारा 2ख के अंतर्गत अवमान आवेदन ।

आवेदक की ओर से सर्वश्री अरविन्द श्रीवास्तव, सर्वेश्वरी प्रसाद, ऋषभ कुमार, यानेन्द्र पांडेय और के. एन. त्रिपाठी

विपक्षियों की ओर से सर्वश्री कौशलेन्द्र नाथ सिंह और एम. सी. चतुर्वेदी

आदेश

याची के विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री के. एन. त्रिपाठी जिनकी सहायता याची के विद्वान् काउंसेलों श्री अरविन्द श्रीवास्तव और श्री ऋषभ कुमार द्वारा की गई, को और विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एम.

सी. चतुर्वेदी जिनकी सहायता विपक्षियों के विद्वान् काउंसेल श्री कौशलेन्द्र नाथ सिंह ने की, को सुना ।

2. मेरे समक्ष प्रस्तुत अवमान याचिका नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण (नोएडा) के अध्यक्ष/मुख्य कार्यपालक अधिकारी को सम्मिलित करते हुए विपक्षियों को **जगदीश चंद्र और अन्य** बनाम **नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण, नोएडा** (2007 की प्रथम अपील संख्या 412) वाले मामले में फाइल की गई प्रथम अपील में तारीख 14 दिसंबर, 2007 को पारित आदेश को जानबूझकर न माने जाने के कारण दंडित किए जाने के प्रयोजनार्थ वर्ष 971 के न्यायालय अवमान अधिनियम के अधीन फाइल की गई है ।

3. स्टाम रिपोर्टर ने सूचित किया है कि अपीली न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को विपक्षियों के संज्ञान में तारीख 7 फरवरी, 2014 को लाया गया था, तद्नुसार अवमान याचिका 6 वर्ष और 65 दिन व्यतीत हो जाने के पश्चात् फाइल की गई है । विपक्षी संख्या 1 उपस्थित हुआ और उसने शपथपत्र फाइल किया, जिसमें अन्य बातों के साथ यह अभिकथित किया कि अवमान याचिका चूकों और विलंब के कारण बाधित है और साथ ही अपीली न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री भी 1971 के न्यायालय अवमान अधिनियम के अंतर्गत निष्पादन किए जाने योग्य नहीं है । अवमान याचिका पोषणीय नहीं है, आवेदक/अपीलार्थी को उपलब्ध अन्य अनुतोष यह है कि वह निष्पादन कार्यवाहियों का आश्रय लेने के लिए सिविल न्यायालय की शरण में जाए ।

4. मेरे समक्ष प्रस्तुत याचिका में जिन तथ्यों का उल्लेख किया गया है, संक्षेप में यह है कि अपीलार्थी का भूखंड 1894 के भूमि अर्जन अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाहियों में तारीख 30 जून, 1987 को जारी अधिसूचना के मतावलंबन में अर्जित कर लिया गया था । विशेष भूमि अर्जन अधिकारी द्वारा अधिनिर्णय पारित किया गया, जिसके द्वारा विशेष भूमि अर्जन अधिकारी द्वारा 46.64 रुपए प्रतिवर्ग गज की दर से प्रतिकर का निर्धारण कर दिया गया । अधिनिर्णय/प्रतिकर विद्वान् जिला

न्यायाधीश के समक्ष संदर्भ में चुनौती के अध्यधीन था, जिसमें प्रतिकर में 148.75 रुपए प्रतिवर्ग गज की दर से तारीख 28 अगस्त, 2000 के निर्णय द्वारा बढ़ोत्तरी कर दी गई । तथापि, निर्देश न्यायालय ने निर्देशित किया कि प्रतिकर की रकम से विकास प्रभार के रूप में 50 प्रतिशत रकम की कटौती कर ली जाए । इस निर्देश से व्यथित होकर अपीलार्थी/ आवेदक ने अन्य व्यथित व्यक्तियों के साथ पृथक् प्रथम अपीलें फाइल की जिनको इस न्यायालय द्वारा एक ही निर्णय और आदेश द्वारा निर्णीत कर दिया गया । अपील न्यायालय ने तारीख 14 दिसंबर, 2007 के निर्णय और आदेश द्वारा प्रतिकर की रकम को 297.5 रुपए प्रतिवर्ग गज की दर से बढ़ा दिया और निदेश न्यायालय के आदेश को यह निर्देश देते हुए इस सीमा तक अपास्त कर दिया कि विकास प्रभार की 50 प्रतिशत रकम की कटौती कर ली जाए । इस आदेश का क्रियान्वयन भाग निम्नलिखित है :–

> "तद्नुसार, जहां तक प्रतिकर की रकम, जिसका संदाय याचियों को किया जाना है, का आकलन किए जाने के प्रयोजनार्थ वास्तविक बाजार मूल्य के आधार पर की गई कटौती की सीमा तक आक्षेपित निदेश और अधिनिर्णय का संबंध है, को एतदद्वारा अभिखंडित किया जाता है और प्रत्यर्थियों को निर्देशित किया जाता है कि वे विकास प्रभाग के बाबत किसी भी रकम की कटौती किए बिना प्रतिकर की रकम की पुनर्गणना करें और उसका संदाय याचियों को आज की तारीख से तीन माह के भीतर 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज समेत, जिसकी गणना प्रतिकर की रकम पर उस तारीख से की जाएगी जिस तारीख को प्रतिकर की रकम का संदाय किया जाना था और उस तारीख तक जिस तारीख को संदाय किया गया, कर दें ।
>
> इन मताभिव्यक्तियों के साथ पक्षों की प्रथम अपीलों और/या प्रति-आक्षेपों को निस्तारित किया जाता है । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जाता ।"

5. इस निर्णय को नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण

द्वारा 2009 की विशेष इजाजत याचिका संख्या 5276 में चुनौती दी गई जो तारीख 29 अक्तूबर, 2014 को खारिज हो गई । नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण ने अपीलों के खारिज किए जाने के तुरंत पश्चात् अपीली न्यायालय द्वारा तारीख 29 अक्तूबर, 2014 को विनिर्धारित प्रतिकर का संदाय कर दिया ।

6. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने निवेदन किया कि अपीली न्यायालय ने 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज के संदाय के लिए निर्देशित किया था, जो उनके अनुसार प्रतिकर के ऊपर और उसके अतिरिक्त ब्याज है और भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 34 के अधीन अनुध्यांत कानूनी ब्याज है । उन्होंने आगे यह दलील भी दी कि नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण ने प्रतिकर की रकम, जिसमें कानूनी ब्याज भी सम्मिलित है, पर और उसके अतिरिक्त ब्याज का संदाय न करके जानबूझकर और स्वेच्छयापूर्वक इस न्यायालय के आदेश का अनदेखा किया है । उन्होंने आगे दलील दी कि ब्याज का संदाय न करके, जैसाकि इस न्यायालय द्वारा निर्देशित किया गया है, निरंतर चलता रहने वाला वाद कारण उद्भूत हो गया है, इसलिए याचिका विलंब और चूकों द्वारा बाधित नहीं है । तथापि, सावधानी को दृष्टि में रखते हुए वर्ष 1963 के परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन विलंब को क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ एक आवेदन फाइल किया गया है ।

7. नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने इन दलीलों का खंडन करते हुए दलील दी कि आक्षेपित निर्णय और डिक्री को सम्यक् अनुक्रम में संतुष्ट किया जा चुका है, 9 प्रतिशत/15 प्रतिशत की दर से संदेय कानूनी ब्याज के साथ प्रतिकर की रकम का तुरंत संदाय किया जा चुका है । आवेदक किसी अन्य ब्याज के हकदार नहीं है । उन्होंने आगे दलील दी कि अपील न्यायालय ने मात्र 10 प्रतिशत की दर से ब्याज के संदाय के लिए निर्देशित किया था, जब कि नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण ने 15 प्रतिशत की दर से ब्याज का संदाय किया है, जो अधिक है और जिसकी वसूली आवेदकों से की जानी चाहिए । उन्होंने

आगे दलील दी कि लगभग 50 प्रथम अपीलों को एक ही आदेश द्वारा निर्णीत किया गया था, किंतु किसी भी अपीलार्थी ने इस न्यायालय की शरण नहीं ली या नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा पहले से ही संदत्त कानूनी ब्याज के ऊपर और उसके अतिरिक्त 10 प्रतिशत ब्याज की दर से दावा करते हुए निष्पादन कार्यवाही आरंभ नहीं की । आवेदक एक मात्र ऐसा अपीलार्थी है जिसने 6 वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् इस न्यायालय की शरण ली है । नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा ब्याज के बाबत किसी भी अन्य रकम का संदाय किया जाना अपेक्षित नहीं है ।

8. नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण के विद्वान् काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश की स्वेच्छयापूर्वक और जानबूझकर अवज्ञा नहीं की गई है । डिक्री को संतुष्ट किया जा चुका है । किसी भी परिस्थिति में डिक्री का निष्पादन अवमान अधिकारिता का प्रयोग करते हुए और सिविल अनुतोष का अनदेखा करते हुए नहीं किया जा सकता ।

9. पक्षों की परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार किया गया ।

10. जो प्रश्न मेरे द्वारा आरंभिकत: विचारार्थ उद्भूत होता है, यह है कि क्या किसी सिविल न्यायालय द्वारा पारित डिक्री का निष्पादन अवमान कार्यवाहियों में किया जा सकता है या अनुकल्प में क्या अपीली न्यायालय के आदेश की अवज्ञा जानबूझकर की गई है, जिसके संदर्भ में न्यायालय अवमान अधिनियम के अंतर्गत अधिकारिता का अवलंब किया जा सकता है ।

11. पक्षों के मध्य तथ्यों के संबंध में कोई विवाद नहीं है । यह उचित होगा कि प्राधिकारियों द्वारा की गई कार्यवाहियों पर विधि के अनुपात को ध्यान में रखते हुए और अभिव्यक्ति 'जानबूझकर अवज्ञा' के अर्थ पर विचार किया जाए ।

12. न्यायालय अवमान अधिनियम की धारा 2(ख) इस मामले के न्यायनिर्णयन के प्रयोजनार्थ सुसंगत है, जो निम्नलिखित है :-

"2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो –

(क) *** *** ***

(ख) 'सिविल अवमान' से किसी न्यायालय के किसी निर्णय, डिक्री, निदेश, आदेश, रिट या अन्य आदेशिका की जानबूझकर अवज्ञा करना अथवा न्यायालय से किए गए किसी वचनबंध को जानबूझकर भंग करना अभिप्रेत है ;

(ग) *** *** ***

(घ) *** *** ***

13. अवमान अधिकारिता आदेश की अवज्ञा के लिए नहीं, बल्कि इस निष्कर्ष पर पहुंचने पर कि अवज्ञा जानबूझकर की गई है, अवमानकर्ता को दंडित किए जाने तक सीमित होती है, मात्र अवज्ञा ही पर्याप्त नहीं होगी, जब तक कि यह दर्शित और साबित नहीं कर दिया जाता कि अवज्ञा जानबूझकर, स्वेच्छयापूर्वक और आशयपूर्वक की गई ।

14. **अशोक पेपर कामगार यूनियन** बनाम **धरम ढ़ोडा और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने (निर्णय के पैरा 17 में) अभिव्यक्ति 'जानबूझकर' और न्यायालय अवमान अधिनियम की धारा 2 को स्पष्ट करते हुए अभिनिर्धारित किया कि इसका आशय किसी ऐसे कार्य या लोप से है जिसे किसी की कार्य न करने के आशय के साथ स्वेच्छयापूर्वक या आशयपूर्वक किया गया है, जिसे किया जाना विधि की दृष्टि में अपेक्षित है । अवमान गठित किए जाने के प्रयोजनार्थ न्यायालय के आदेश की प्रकृति ऐसी होनी चाहिए जो सामान्य परिस्थितियों में निष्पादित किए जाने योग्य हो :–

"17. .... 'जानबूझकर' का आशय किसी ऐसे कार्य या लोप से है जो किसी ऐसे कार्य को विनिर्दिष्ट आशय के साथ स्वेच्छयापूर्वक और आशयपूर्वक किया गया है जिसको करने से विधि द्वारा मना

---

[1] (2003) 11 एस. सी. सी. 1.

किया गया है या किसी ऐसे कार्य को विफल किए जाने के विनिर्दिष्ट आशय के अंतर्गत किया गया है, जिसको किए जाने की विधि अपेक्षा करती है, अर्थात् गलत आशय के साथ या तो विधि की अवज्ञा किए जाने या उसका असम्मान किए जाने के प्रयोजनार्थ । यह गलत आशय या गलत प्रेरणा के साथ जानबूझकर की गई कार्यवाही को दर्शित करता है । इसलिए, अवमान गठित किए जाने के प्रयोजनार्थ न्यायालय का आदेश ऐसी प्रकृति का होना चाहिए जो किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा निष्पादित किए जाने योग्य हो, जिस पर सामान्य परिस्थितियों में आरोप लगाया गया हो । इसके लिए किसी असाधारण प्रयास की आवश्यकता नहीं होती और न ही यह अनुपालन के प्रयोजनार्थ पूर्णत: या भागत: किसी तृतीय पक्ष के किसी कार्य या लोप पर निर्भर होना चाहिए । इसका निर्णय प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए .... ।"

15. न्यायालय को न केवल अवज्ञा के बाबत संतुष्ट होना चाहिए, बल्कि इस बाबत भी संतुष्ट होना चाहिए कि वह अवज्ञा जानबूझकर और आशयपूर्वक थी । यदि न्यायालय किसी विनिर्दिष्ट मामले की परिस्थितियों के आधार पर संतुष्ट है कि यद्यपि अवज्ञा की गई, किंतु वह अवज्ञा किन्हीं विवशकारी परिस्थितियों के परिणामस्वरूप थी जिनके अधीन अवमानकर्ता के लिए यह संभव नहीं था कि वह आदेश का अनुपालन करता, तो न्यायालय अभिकथित अवमानकर्ता को दंडित नहीं करेगा ।

16. **दिनेश कुमार गुप्ता** बनाम **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अवमान अधिनियम की धारा 2(ख) की परिधि का विश्लेषण करते हुए (निर्णय के पैरा 17 में) निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :-

"17. अब हम इस स्थिति पर अगले प्रश्न और अधिक सुसंगत प्रश्न पर विचार करते हैं कि क्या अपीलार्थी के विरुद्ध आरंभ की गई अवमान कार्यवाही को वर्तमान मामले के तथ्यों और

---

[1] (2010) 12 एस. सी. सी. 770.

परिस्थितियों से निकाले गए मात्र अनुमान और उपधारणा के आधार पर मान्य अभिनिर्धारित किया जा सकता है । **हमारी सुविचारित राय में इस प्रश्न का उत्तर इस न्यायालय द्वारा दिए गए अनेक विनिश्चयों में परावर्तित सुस्थापित विधिक स्थिति को दृष्टि में रखते हुए नकारात्मक में होना चाहिए कि सिविल प्रकृति के अवमान के बाबत यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि वह अवमान केवल तभी किया गया है यदि आदेश की जानबूझकर अवज्ञा की गई है और यद्यपि अवज्ञा की गई, फिर भी उस अवज्ञा के आधार पर यह दर्शित नहीं होता कि वह अवज्ञा जानबूझकर और सचेतन स्थिति में की गई है, तो यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि अवमान का मामला बन गया** । वास्तव में यदि विभिन्न परिस्थितियों के उत्पन्न हो जाने के आधार पर किसी आदेश के एक से अधिक निर्वचन किया जाना संभव है, तो उस आदेश के अननुपालन के संबंध में यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता की अननुपालन आदेश की जानबूझकर की गई अवज्ञा है, जिसके आधार पर अवमान का मामला बनता हो और जिसके दंड के अधिरोपण को सम्मिलित करते हुए गंभीर परिणाम होते हों । **तथापि, जब न्यायालयों का ध्यान इस प्रश्न की ओर आकर्षित किया जाता है कि क्या किसी विनिर्दिष्ट परिस्थिति के बारे में यह उपधारणा की जा सकती है कि अवज्ञा जानबूझकर की गई या यह आदेश के अनुपालन का अनदेखा किए जाने के प्रयोजनार्थ असत्य स्पष्टीकरण का मामला है, चाहे वह असत्य स्पष्टीकरण कितना ही भटकाने वाले तरीके से किया गया हो, तो वह निश्चित रूप से किसी विनिर्दिष्ट मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होगा** ; किंतु इसका निर्णय करते समय यह विधित: शुद्ध होगा कि ऐसा कोई अनुमान उपधारणा पर आधारित हो चूंकि 1971 का न्यायालय अनुमान अधिनियम स्पष्टत: अनुध्यात करता है और इस बात पर बल देता है कि इसके पहले कि किसी व्यक्ति को सिविल प्रकृति के अवमान के आरोप के लिए दंडित किया जाए ।" जानबूझकर की गई अवज्ञा के तत्व अवश्य ही विद्यमान होने चाहिए,

17. अत: इसका आशय यह हुआ कि न्यायालय धारा 2(ख) के अधीन सिविल प्रकृति के अवमान के कानूनी संघटकों की उपेक्षा या अनदेखा नही करेगा कि अभिकथित रूप से जिस आदेश का अवमान हुआ है, को इस परीक्षण को संतुष्ट करना होगा कि यह जानबूझकर की गई अवज्ञा है । अन्य शब्दों में धारा 2(ख) का अवलंब केवल तभी लिया जा सकता है जब अवज्ञा जानबूझकर की गई और यह धारा किसी आदेश या उससे उद्भूत तथ्यों और परिस्थिति के युक्तिसंगत या तर्कपूर्ण निर्वचन के लिए परिधि उपबंध करती है । मात्र बिना किसी आशय के की गई अवज्ञा किसी को अवमानना का दोषी अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ पर्याप्त नहीं होगी, यद्यपि अवज्ञा साबित हो चुकी हो । अवमानकर्ता द्वारा जानबूझकर अवज्ञा के तथ्य की अनुपस्थिति उसको अवज्ञा का दोषी नहीं बना सकती, जब तक कि अवज्ञा में त्रुटि या अवचार की मात्रा अंतर्वलित न हो । अत:, बिना किसी आशय के की गई अवज्ञा किसी को अवमान का दोषी ठहराए जाने के लिए पर्याप्त नहीं है ।

18. यह सुस्थापित विधि है कि किन्हीं परिस्थितियों के अंतर्गत प्रायिक, दुर्घटनावश या बिना किसी आशय के अवज्ञा के कार्य, जो धृष्टता की किसी भी संभावना से इनकार करते हैं, केवल सिद्धांत रूप में अवमान हो सकते हैं, किंतु इसके आधार पर किसी अवमानकर्ता को दंड का दायी नहीं ठहराया जा सकता । किसी को न्यायालय के अवमान का दोषी ठहराए जाने के प्रयोजनार्थ संबद्ध व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि उसने निर्णय, डिक्री इत्यादि की जानबूझकर अवज्ञा की हो या किसी न्यायालय के समक्ष दिए गए वचन का जानबूझकर भंग कारित किया हो । (देखें : **बी. के. कार** बनाम **उड़ीसा उच्च न्यायालय**[1], **बिहार राज्य** बनाम **रानी सोनाबती कुमारी**[2] और **एन. बक्शी** बनाम **ओ. के. घोष**[3] । इस सिद्धांत को **जीवानी कुमारी पारिख** बनाम **सत्यब्रत चक्रवर्ती**[4] और

---

[1] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 1367.

[2] ए. आई. आर. 1954 पटना 513.

[3] ए. आई. आर. 1957 पटना 528.

[4] (1990) 4 एस. सी. सी. 737.

ज्ञानी चंद्र बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में दोहराया गया ।)

19. **नियाज मोहम्मद और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य**[2] वाले मामले, जिसमें अवमानकर्ताओं ने निर्णय का पालन नहीं किया था और वेतन निर्मुक्त कर दिया था, में यह अभिनिर्धारित किया गया कि मामले के तथ्यों के आधार पर अवज्ञा कारित की गई है, यद्यपि यह अवज्ञा जानबूझकर कारित नहीं की गई है इसलिए इसको सिविल अवमान का दोषी नहीं माना जा सकता । उच्चतम न्यायालय ने किसी आदेश का निष्पादन करने वाले न्यायालय और अवमान के लिए दंडित करने वाले न्यायालय के मध्य विभेद किया है । **दुष्यंत सोमल** बनाम **सुषमा सोमल**[3] वाले मामले का अवलंब यह अभिनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ लिया गया कि अवमानकर्ता न्यायालय के समक्ष इस निष्कर्ष पर पहुंचने के प्रयोजनार्थ पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत कर पाने के समर्थ है कि उसके लिए आदेश का पालन किया जाना असंभव है, अत: न्यायालय अभिकथित अवमानकर्ता को दंडित करने में न्यायनुमत नहीं होगा ।

20. **कवर सिंह सैनी** बनाम **दिल्ली उच्च न्यायालय**[4] वाले मामले में जो प्रश्न माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष विचारार्थ उद्भूत हुआ, यह था कि क्या किसी पक्ष द्वारा दिए गए कथन/वचनबंध के परिणामस्वरूप सिविल डिक्री पारित हो गई है, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 2-क या न्यायालय अवमान अधिनियम के अधीन प्रस्तुत किए गए आवेदन पर सिविल न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता था और/या क्या मामला अंतत: सिविल न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय को निर्दिष्ट किया जा सकता था । न्यायालय ने (निर्णयों के पैरा 10 में) अभिनिर्धारित किया कि यदि सिविल वाद में पारित डिक्री के निबंधनों के अनुसार अननुपालन की शिकायत की गई है, तो व्यथित व्यक्ति को यह अनुतोष उपलब्ध है कि वह सिविल प्रक्रिया संहिता के

---

[1] (2016) 15 एस. सी. सी. 164.

[2] (1994) 6 एस. सी. सी. 332.

[3] (1981) 2 एस. सी. सी. 277.

[4] (2012) 4 एस. सी. सी. 360.

आदेश 21, नियम 32 के अधीन अनुतोष के लिए निष्पादन न्यायालय की शरण में जा सकता है :-

> "10. यदि सिविल वाद में पारित डिक्री के निबंधनों के अननुपालन की शिकायत की गई है, तो व्यथित व्यक्ति को यह अनुतोष उपलब्ध है कि वह सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 32, जो विस्तारपूर्वक कार्यवाही के लिए उपबंधित करता है और जिसमें पक्ष अपने साक्ष्य प्रस्तुत कर सकते हैं और साक्षियों का परीक्षण और प्रतिपरीक्षण भी कर सकते हैं, जो कि अवमान की कार्यवाहियों, जो संक्षिप्त प्रकृति की होती है, में अनुज्ञप्त नहीं है, के अधीन निष्पादन न्यायालय की शरण में जाए । सिविल प्रक्रिया संहिता की आदेश 39, नियम 2क के अधीन प्रस्तुत किया गया आवेदन तब पोषणीय नहीं होगा यदि वाद डिक्री हो चुका हो । विधि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21, नियम 32 के अधीन उपलब्ध अनुतोषों से बचने और अवमान कार्यवाहियों का आश्रय लेने की अनुज्ञा इस कारणवश प्रदान नहीं करती कि न्यायालय को 1971 के अधिनियम के अधीन अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना होता है, जब संबद्ध व्यक्ति को कोई प्रभावी और अनुकल्पिक अनुतोष उपलब्ध न हो । **अत:, जब पक्षों के मध्य मामला डिक्री या डिक्री के अंतर्गत आदेश, जिसके द्वारा अधिकार प्रदान किए गए हों, के अतिलंघन से संबंधित हो, तो यह समीचीन नहीं होगा कि अवमान अधिकारिता का अवलंब लिया जाए और उसका प्रयोग किया जाए, कुल मिलाकर सार यह है कि डिक्री को निष्पादित किए जाने के साधन के रूप में या मात्र इस कारणवश कि कुछ अनुतोषों को प्राप्त होने में समय लग सकता है या वे अनुतोष अत्यधिक परिस्थितिजन्य प्रकृति के हैं । अत: स्थायी व्यादेश का अतिक्रमण कार्यवाहियों के निष्पादन के समय दुरुस्त किया जा सकता है, न कि अवमान कार्यवाहियों में ।"**

21. वचनबंध, जो न्यायालय की डिक्री का भाग है, का अतिक्रमण या भंग के परिणामस्वरूप न्यायालय का अवमान हो जाता है, इस तथ्य के बावजूद कि डिक्रीधारक को यह अधिकार है कि वह डिक्री का

निष्पादन कराए । अन्य शब्दों में किसी वचनबंध के भंग के लिए किसी व्यक्ति के अवमान के लिए दंडित किया जा सकता है, किंतु डिक्री का निष्पादन सिविल अवमान न्यायालय के समक्ष विहित प्रक्रिया के अनुसार होना चाहिए । उच्चतम न्यायालय ने **बैंक ऑफ बड़ोदा** बनाम **सदरुद्दीन हसनदया**[1] वाले मामले में जो अभिनिर्धारित किया, वह निम्नलिखित है :-

> "प्रत्यर्थियों ने इस न्यायालय के समक्ष सहमति की शर्तें फाइल की हैं, किंतु उन सहमति की शर्तों में एक वचनबंध समाविष्ट है कि वे संपत्तियों को किसी को भी अन्य संक्रामित नहीं करेंगे, उन पर भार या प्रभार सृजित नहीं करेंगे, जब तक कि डिक्री संतुष्ट नहीं हो जाती । इस न्यायालय ने इस वचनबंध और सहमति की शर्तों पर कार्यवाही करते हुए डिक्री पारित की ....., इसलिए इस न्यायालय ने सहमति की शर्तों पर अनुमति प्रदान कर दी और उनको न्यायालय की डिक्री बना दिया । **उस वचनबंध, जो न्यायालय के डिक्री का भाग बन गया का अतिक्रमण या उसका भंग निश्चित रूप से इस तथ्य के बावजूद न्यायालय का अवमान है कि डिक्रीधारक को अधिकार है कि वह डिक्री का निष्पादन कर सके । अवमान न्यायालय और अभिकथित अवमानकर्ता के मध्य का मामला होता है और मुकदमेबाजी में अंतर्वलित पक्षों के अधिकारों या बाध्यताओं द्वारा किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं होता .....**
>
> 15. ..... हम वर्तमान कार्यवाहियों में सामान्यत: प्रत्यर्थियों द्वारा दिए गए वचनबंध के अतिक्रमण या भंग से संबद्ध हैं । विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री सी. ए. सुन्दरम ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी संख्या 2 व्यक्तिगत रूप से उपस्थित नहीं था और उसके द्वारा वचनबंध मुख्तारनामे के माध्यम से दिया गया था । हमारे विचार में मात्र यह तथ्य कि प्रत्यर्थी संख्या 2 व्यक्तिगत रूप से उपस्थित नहीं था और उसके द्वारा दिया गया वचनबंध और सहमति की शर्तें मुख्तारनामे के माध्यम से प्रस्तुत की गई थी, से इस बाबत कोई अंतर नहीं पड़ेगा कि उसको भी इस न्यायालय

---

[1] (2004) 1 एस. सी. सी. 360.

द्वारा सहमति के आधार पर पारित की गई डिक्री के अंतर्गत लाभ प्राप्त हुआ था ।"

22. हमारे समक्ष उपस्थित मामले में यदि न्यायालय किसी किराएदार को किराएदारी वाले परिसर को रिक्त करने के लिए समय प्रदान करता है और किराएदार उस परिसर को किसी विशिष्ट समयावधि के व्यतीत हो जाने के पश्चात् रिक्त करने के लिए वचनबंध प्रस्तुत करता है, तो उस वचनबंध का भंग अवमान होगा । (देखें : **शखान गणेश अरावनदेकर और एक अन्य** बनाम **महादेव विनायक माथकर और अन्य**[1] और **महेन्द्र कुमार गांधी** बनाम **मोहम्मद ताजेर अली और अन्य**[2] वाले मामले)

23. किसी ऐसे मामले में जहां आपवादिक परिस्थितियां विद्यमान हों, न्यायालय वचनबंध/निर्णय/आदेश या डिक्री के अतिक्रमण/भंग के लिए सिविल अवमान के मामले में लागू होने वाले उपबंधों का आश्रय ले सकता है । तथापि, न्यायालय को ऐसे किसी भी आवेदन पर कोई अंतिम आदेश पारित किए जाने के पूर्व स्वयं को इस बाबत अवश्य संतुष्ट करना चाहिए कि ऐसे किसी निर्णय, डिक्री, निदेश या आदेश का अतिक्रमण हुआ है और इस प्रकार की कोई भी अवज्ञा जानबूझकर और आशयपूर्वक की गई है । यद्यपि किसी डिक्री के निष्पादन मामले में निष्पादन न्यायालय को इस बाबत चिंतित नहीं होना चाहिए कि क्या डिक्री की अवज्ञा जानबूझकर की गई है या नहीं और न्यायालय उस डिक्री को निष्पादित करने के लिए बाध्य है, चाहे इसके परिणाम कुछ भी हों । किसी अवमान कार्यवाही में तथाकथित अवमानकर्ता न्यायालय को इस बाबत संतुष्ट कर सकता है कि अवज्ञा किन्हीं विवशकारी परिस्थितियोंवश हो गई थी और ऐसी स्थिति में उसको दंड प्रदान नहीं किया जा सकता । (देखें : **नियाज मोहम्मद और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य**[3], **बैंक ऑफ बड़ोदा** (उपरोक्त) और **रमानारंग** बनाम

---

[1] (2008) 10 एस. सी. सी. 186.

[2] (2008) 10 एस. सी. सी. 795.

[3] (1994) 6 एस. सी. सी. 332.

रमेश नागरंग और एक अन्य[1] वाले मामले)

24. अवमान कार्यवाही अर्ध दांडिक प्रकृति की कार्यवाही होती है और इसलिए जिस स्तरमान के सबूत अपेक्षित होते हैं, वे अन्य दांडिक मामले के समान ही होते हैं । अभिकथित अवमानकर्ता उन समस्त रक्षोपायों/अधिकारों के संरक्षण के हकदार हैं जो दांडिक न्यायशास्त्र में उपबंधित हैं जिनमें संदेह का लाभ भी सम्मिलित है । किसी पक्ष द्वारा आशयपूर्वक न्याय के प्रशासन में स्पष्ट रूप से अवरोध सृजित किए जाने का मामला उपस्थित होना चाहिए जिससे कि मामले को उक्त उपबंध की परिधि के भीतर लाया जा सके । मामला मात्र अनुमानों पर आधारित नहीं होना चाहिए । **देवब्रत बंधोपाध्याय और अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और एक अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने जो मताभिव्यक्ति की, वह निम्नलिखित है :-

> "यह प्रश्न कि क्या न्यायालय का अवमान हुआ है या नहीं, एक गंभीर प्रश्न है । न्यायालय ही आरोप लगाने वाला है और साथ ही उन आरोपों पर सुनवाई करने वाला भी उसी न्यायालय का न्यायाधीश है । इस कारणवश न्यायालय पर इतनी अधिक सावधानीपूर्वक कार्य करने का दायित्व होता है जितना कि संभव हो, जिस कारणवश निर्णय की त्रुटियों और न्यायालयों और अधिकरणों में व्याप्त चिरकालिक प्रथाओं से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों के लिए समस्त गुंजाइश संभव हो । यह केवल तब होता है जब दुराग्रही आचरण का कोई स्पष्ट मामला उपस्थित होता है, जिसमें कोई भी स्पष्टीकरण अन्यथा रूप से सम्मिलित नहीं होता और यह निष्कर्ष निकलता है कि अवमानकर्ता को अवश्य ही दंडित किया जाना चाहिए ..... । अवमान की विधि के अंतर्गत दंड तब आवश्यक होता जब चूक जानबूझकर की गई हो और किसी व्यक्ति द्वारा उसके कर्तव्य की अवज्ञा में की गई हो और उसको प्राप्त प्राधिकार की अवज्ञा में हो । किसी अस्पष्ट मामले में कार्रवाई किया जाना का अर्थ यह है कि अवमान की विधि अन्य उपायों के लिए अपने

---

[1] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1883.

[2] ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 189.

कर्तव्य का पालन करे किंतु इसको प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया है)

25. हमारे समक्ष उपस्थित मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए आवेदकों द्वारा इस बात को विवादित नहीं किया गया है कि न्यायालय द्वारा विनिर्धारित दर पर प्रतिकर और उस प्रतिकर पर ब्याज का संदाय नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा नहीं किया गया है । पक्षों के मध्य विवाद्यक यह है कि क्या आवेदक भूमि अधिग्रहण अधिनियम के अधीन उपबंधित कानूनी ब्याज के अतिरिक्त 10 प्रतिशत की दर से ब्याज प्राप्त करने का हकदार है । नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण का सुस्पष्ट पक्षकथन यह है कि उन्होंने डिक्री को संतुष्ट कर दिया है और किसी अन्य रकम का संदाय अपेक्षित नहीं है । साथ ही उनके द्वारा यह दलील भी दी गई है कि उन्होंने ब्याज के बाबत अधिक रकम का संदाय कर दिया है ।

26. मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए जो प्रश्न उद्भूत होता है, यह है कि क्या नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा अभिकथित अवज्ञा आशयपूर्वक और जानबूझकर दंड को आमंत्रित करते हुए की गई है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण ने डिक्री को संतुष्ट कर दिया है, यद्यपि वह संतुष्टि आवेदक की संतुष्टि के अनुरूप नहीं है, फिर भी नवीन ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण को दंडित नहीं किया जा सकता । यदि कोई अवज्ञा कारित की गई, तो वह आशयपूर्वक और जानबूझकर कारित नहीं की गई है । यह मामला डिक्री या डिक्री के अंतर्गत आदेश के अतिलंघन से संबंधित नहीं है, अत: सारत:, यह समीचीन नहीं होगा कि डिक्री निष्पादन के लिए और उसके उपाय के रूप में अवमान अधिकारिता का अवलंब लिया जाए और उसका प्रयोग किया जाए । आवेदक को यह अनुतोष उपलब्ध है कि वह निष्पादन कार्यवाही का आशय ले, न कि अवमान कार्यवाही का । किसी डिक्री की अवज्ञा/अतिलंघन के लिए दंड डिक्री का निष्पादन नहीं हो सकता । किसी अवमान न्यायालय की अधिकारिता किसी निष्पादन न्यायालय की अधिकारिता के मुकाबले पृथक् और भिन्न होती है ।

27. ऊपर वर्णित कारणोंवश और अभिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए, यह याचिका विफल होती है और तद्नुसार खारिज की जाती है ।

28. यदि आवेदक डिक्री के निष्पादन के अनुतोष को प्राप्त करना चाहता है, तो यह आदेश और इस आदेश में की गई मताभिव्यक्ति आवेदक के प्रयोजन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेंगी ।

याचिका खारिज की गई ।

शु.

(2020) 1 सि. नि. प. 610 **इलाहाबाद**

रामवीर

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

(2019 की सिविल रिट याचिका संख्या 31076)

तारीख 5 मई, 2020

न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 (1955 का 10) – धारा 3 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1908 की धारा 5] – उचित कीमत की दुकान की अनुज्ञप्ति का रद्दकरण दांडिक मामले में अनुज्ञप्तिधारी की दोषमुक्ति पर रद्दकरण का प्रभाव – अनुज्ञप्तिधारी द्वारा रद्दकरण के आदेश के विरुद्ध परिसीमा के भीतर कोई अपील फाइल न किया जाना और दांडिक मामले में दोषमुक्त हो जाने पर दोषमुक्ति आदेश का लाभ लेते हुए, विलंबित अपील फाइल किया जाना – अनुज्ञप्ति का रद्दकरण उचित माना जाएगा और अनुज्ञप्तिधारी दांडिक मामले में पारित दोषमुक्ति आदेश का लाभ अनुज्ञप्ति के रद्दकरण आदेश के विरुद्ध विलंबित अपील फाइल किए जाने के प्रयोजनार्थ नहीं ले सकता ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि याची जिला बुलंदशहर के मूधीबकरपुर ग्राम स्थित उचित मूल्य की दुकान का डीलर है । उसके उसके विरुद्ध की गई शिकायतों के आधार पर तारीख 19 अगस्त, 2009 के विरुद्ध निलंबन आदेश जारी किया गया । तत्पश्चात् उसके विरुद्ध जांच की गई और प्रत्यर्थी संख्या 2 अर्थात् जिला आपूर्ति अधिकारी द्वारा तारीख 21 अप्रैल, 2010 को उसको आबंटित उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति रद्द कर दी गई । याची ने रद्दकरण आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की, जिसको भी तारीख 27 सितंबर, 2012 को अदम पैरवी में खारिज कर दिया गया । याची ने अपील को पुन: बहाल किए जाने के प्रयोजनार्थ आवेदन फाइल किया जिसको भी तारीख 10 अक्तूबर, 2013 को अस्वीकृत कर दिया गया । इन्हीं कारणोंवश रिट याचिका फाइल की गई जो 2014 की रिट याचिका संख्या 11033 है और इस न्यायालय द्वारा तारीख 20 फरवरी, 2014 को पारित आदेशानुसार अपील को पुन: बहाल कर दिया गया और उस पर गुणागुण के आधार पर सुनवाई की गई और अंतत: तारीख 22 जनवरी, 2016 को खारिज कर दी गई । इसी दौरान याची के विरुद्ध 1955 के आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के अधीन दांडिक अभियोजन आरंभ किया गया । इस अभियोजन में तारीख 1 अप्रैल, 2019 को याची को दोषमुक्त कर दिया गया । उत्तर प्रदेश राज्य ने दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध तारीख 15 जून, 2019 को अपील फाइल की । याची ने भी दोषमुक्ति आदेश का लाभ लेने के प्रयोजनार्थ यह रिट याचिका फाइल की है और दावा किया है कि चूंकि दांडिक मामले में उसकी दोषमुक्ति हो चुकी है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी अनुज्ञप्ति के रद्दकरण आदेश और तत्पश्चात् अपीली आदेश द्वारा उसकी अनुज्ञप्ति के रद्दकरण आदेश की पुष्टिकरण आदेश को अपास्त किया जाए और याची की अनुज्ञप्ति को पुन: बहाल किया जाए । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान् स्थायी काउंसेल ने उत्तर देते हुए निवेदन किया कि याची को उस आदेश, जिसके द्वारा अनुज्ञप्ति को तारीख 21 अप्रैल, 2010 के आदेश द्वारा रद्द किया गया और अपीली फोरम द्वारा तारीख 22 दिसंबर, 2016 को पारित आदेश,

जिसके द्वारा रद्दकरण आदेश की पुष्टि की गई, को चुनौती देने का सदैव ही अवसर उपलब्ध था और उसको दांडिक मामले की समाप्ति की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए थी और इसलिए उन्होंने निवेदन किया कि रिट याचिका अत्यधिक विलंबित है और याची को तारीख 1 अप्रैल, 2019 को दांडिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश का कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सकता । विद्वान् स्थायी काउंसेल न आगे निवेदन किया कि तारीख 1 अप्रैल, 2019 का आदेश के विरुद्ध अपील की जा चुकी है और इसलिए याची विचारण न्यायालय द्वारा दांडिक मामले में पारित आदेश का कोई भी लाभ नहीं ले सकता । विद्वान् स्थायी काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि विभाग द्वारा पारित आदेश 'अधिसंभाव्यता की प्रबलता' के सिद्धांत पर आधारित है, जबकि दांडिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश 'कड़ाईपूर्वक दायित्व' के सिद्धांत पर आधारित है और इसलिए याची दांडिक मामले में विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश का कोई लाभ नहीं ले सकता । याची के विद्वान् काउंसेल और विद्वान् स्थायी काउंसेल को सुनने के पश्चात् इस न्यायालय का यह निश्चायक मत है कि याची ने अत्यधिक विलंब के साथ इस न्यायालय की शरण ली । उसको इस न्यायालय की शरण तभी ले लेनी चाहिए थी जब उसकी अनुज्ञप्ति के रद्दकरण आदेश को तारीख 22 दिसंबर, 2016 को अपीली न्यायालय द्वारा पारित आदेश द्वारा अंतिमता प्रदान कर दी गई थी । इन परिस्थितियों में यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि यह याचिका अत्यधिक विलंबित है अतः, याची दांडिक मामले में विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश का कोई लाभ नहीं ले सकता । साथ ही यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर भी पहुंचता है कि विचारण दांडिक न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की जा चुकी है । (पैरा 5, 6 और 7)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 2 एस. सी. सी. 365 : **भास्कर रेड्डी और एक अन्य** बनाम **पुलिस अधीक्षक और एक अन्य** ।	4

रिट अपीली अधिकारिता : 2019 की सिविल रिट याचिका संख्या 31076.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री सुमित शूरी और निपुन सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल

आदेश

मेरे समक्ष उपस्थित मामले का याची जिला बुलंदशहर के मूधीबकरपुर ग्राम स्थित उचित मूल्य की दुकान का डीलर है । उसको उसके विरुद्ध की गई शिकायतों के आधार पर तारीख 19 अगस्त, 2009 का एक निलंबन आदेश जारी किया गया । उसके विरुद्ध जांच की गई और प्रत्यर्थी संख्या 2 अर्थात् जिला आपूर्ति अधिकारी द्वारा तारीख 21 अप्रैल, 2010 को उसको आबंटित उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति को रद्द कर दिया गया ।

2. याची ने रद्दकरण के उक्त आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की, जिसको भी तारीख 27 सितंबर, 2012 को अदम पैरवी में खारिज कर दिया गया । याची ने अपील को पुन: बहाल किए जाने के प्रयोजनार्थ आवेदन फाइल किया जिसको भी तारीख 10 अक्तूबर, 2013 को अस्वीकृत कर दिया गया । इन्हीं कारणोंवश रिट याचिका फाइल की गई जो 2014 की रिट याचिका संख्या 11033 (**राम वीर** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**) है और इस न्यायालय द्वारा तारीख 20 फरवरी, 2014 को पारित आदेशानुसार अपील को पुन: बहाल कर दिया गया और उस पर गुणागुण के आधार पर सुनवाई की गई और अंतत: तारीख 22 जनवरी, 2016 को खारिज कर दी गई । इसी दौरान याची के विरुद्ध 1955 के आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 3/7 के अधीन दांडिक अभियोजन आरंभ किया गया । इस अभियोजन में तारीख 1 अप्रैल, 2019 को याची को दोषमुक्त कर दिया गया । उत्तर प्रदेश राज्य ने दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध तारीख 15 जून, 2019 को अपील फाइल की ।

3. याची ने तारीख 1 अप्रैल, 2019 को पारित दोषमुक्ति आदेश के विरुद्ध यह रिट याचिका फाइल की है और दावा किया है कि चूंकि दांडिक मामले में दोषमुक्ति हो चुकी है, जिसके परिणामस्वरूप याची की अनुज्ञप्ति को रद्द कर दिया गया और तत्पश्चात् अपीली आदेश द्वारा उसकी पुष्टि भी कर दी गई, को अपास्त किया जाए और याची की अनुज्ञप्ति को पुन: बहाल किया जाए ।

4. याची के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि जिन आधारों पर अनुज्ञप्ति को रद्द किया गया, उन्हीं आधारों पर अभियोजन भी संचालित किया गया और दांडिक मामले में दोषमुक्ति हो चुकी है । अत:, विद्वान् काउंसेल ने उच्चतम न्यायालय द्वारा **भास्कर रेड्डी और एक अन्य** बनाम **पुलिस अधीक्षक और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लेते हुए निवेदन किया कि चूंकि दांडिक न्यायालय द्वारा याची की सम्मानपूर्वक दोषमुक्ति की जा चुकी है, इसलिए विभाग द्वारा पारित आदेश, जिसके द्वारा अनुज्ञप्ति को रद्द किया गया, भी रद्द किया जाना चाहिए ।

5. तथापि, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान् स्थायी काउंसेल ने उत्तर देते हुए निवेदन किया कि याची को उस आदेश, जिसके द्वारा अनुज्ञप्ति को तारीख 21 अप्रैल, 2010 के आदेश द्वारा रद्द किया गया और अपीली फोरम द्वारा तारीख 22 दिसंबर, 2016 को पारित आदेश, जिसके द्वारा रद्दकरण आदेश की पुष्टि की गई, को चुनौती देने का सदैव ही अवसर उपलब्ध था और उसको दांडिक मामले की समाप्ति की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए थी और इसलिए उन्होंने निवेदन किया कि रिट याचिका अत्यधिक विलंबित है और याची को तारीख 1 अप्रैल, 2019 को दांडिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश का कोई लाभ प्राप्त नहीं हो सकता । विद्वान् स्थायी काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि तारीख 1 अप्रैल, 2019 का आदेश के विरुद्ध अपील की जा चुकी है और

---

[1] (2015) 2 एस. सी. सी. 365.

इसलिए याची विचारण न्यायालय द्वारा दांडिक मामले में पारित आदेश का कोई लाभ नहीं ले सकता । विद्वान् स्थायी काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि विभाग द्वारा पारित आदेश 'अधिसंभाव्यता की प्रबलता' के सिद्धांत पर आधारित है जबकि दांडिक न्यायालय द्वारा पारित आदेश 'कड़ाईपूर्वक दायित्व' के सिद्धांत पर आधारित है और इसलिए याची दांडिक मामले में विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश का कोई लाभ नहीं ले सकता ।

6. याची के विद्वान् काउंसेल और विद्वान् स्थायी काउंसेल को सुनने के पश्चात् इस न्यायालय का यह निश्चायक मत है कि याची ने अत्यधिक विलंब के साथ इस न्यायालय की शरण ली । उसको इस न्यायालय की शरण तभी ले लेनी चाहिए थी जब उसकी अनुज्ञप्ति के रद्दकरण आदेश को तारीख 22 दिसंबर, 2016 को अपीली न्यायालय द्वारा पारित आदेश द्वारा अंतिमता प्रदान कर दी गई थी ।

7. इन परिस्थितियों में यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि यह याचिका अत्यधिक विलंबित याचिका है । अतः, याची दांडिक मामले में विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश का कोई लाभ नहीं ले सकता । पुनः, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विचारण दांडिक न्यायालय के आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की जा चुकी है ।

8. यह याचिका गुणागुण रहित है और तद्नुसार खारिज की जाती है ।

याचिका खारिज की गई ।

शु.

पंचघाटी कंस्ट्रक्शन

बनाम

उत्तराखंड राज्य और अन्य

(2019 की प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 3667)

तारीख 9 जनवरी, 2020

न्यायमूर्ति सुधांशु धूरिया

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14 – तकनीकी बोली का इस आधार पर अस्वीकार किया जाना कि याची ने गलत नाम में प्रतिभूति का डिमांड ड्राफ्ट प्रस्तुत किया – बोली दस्तावेज में इस बाबत स्पष्टता का अभाव होना कि बैंक ड्राफ्ट किस नाम में आहरित किया जाना था – इस तथ्य पर विचार करते हुए कि बोली दस्तावेज में स्पष्टता और असंदिग्धता का अभाव था, तकनीकी बोली का रद्दकरण और उसको अपास्त किया जाना उचित था ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि याची ने एक सड़क, जिसे पेपरसेली-बाल्टा मोटर मार्ग से बिंटोला एम. आर. स्टेज-1 के नाम से जाना जाता है, के निर्माण के लिए कार्य संविदा के लिए आवेदन किया जिसमें याची को तकनीकी रूप से गैर प्रतिक्रियाशील घोषित कर दिया गया और उसकी वित्तीय बोली पर विचार नहीं किया गया । प्रत्यर्थी प्राधिकारियों को इस न्यायालय द्वारा तारीख 5 दिसंबर, 2019 को पारित अंतरिम आदेश द्वारा बोली की प्रक्रिया में आगे की कार्यवाही करने से निषिद्ध कर दिया गया । तथापि, इस प्रक्रम तक वित्तीय बोली को खोला जा चुका था । तद्नुसार याची के अनुसार उसकी बोली 30,00,000/- रुपए (तीस लाख रुपए केवल) की है, जो एल.-1 अर्थात् प्रत्यर्थी संख्या 6 की बोली से निम्नतर है । किंतु इस न्यायालय के समक्ष यह मुख्य विवाद्यक नहीं है । एक मात्र आधार, जिस पर याची को तकनीकी रूप से अनर्ह घोषित किया गया, यह है कि वह बैंक ड्राफ्ट जो याची द्वारा बोली की प्रतिभूति के रूप में जमा किया गया,

6,36,000/- रुपए (छह लाख छत्तीस हजार रुपए केवल) की रकम का है और जिसे प्रत्येक बोलीदाता द्वारा दिया जाना आवश्यक था, 'ई.ई.-पी.आई.यू.-अल्मोड़ा-2' के नाम में दिया जाना था । तथापि, याची द्वारा प्रतिभूति के रूप में प्रस्तुत किया गया ड्राफ्ट 'ई.ई.-पी.एम.जी.एस.वाई.-डिवीजन अल्मोड़ा' के नाम में था । याची द्वारा गलत नाम में प्रतिभूति का बैंक ड्राफ्ट प्रस्तुत किए जाने के कारण उसकी बोली को रद्द कर दिया गया । इससे व्यथित होकर याची ने इस न्यायालय की शरण ली । याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – याची के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने हमारा ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया कि निविदा विवरणों के एक कालम में इसको 'ई.एम.डी.' जो 'ई.ई.पी.एम.जी.एस.वाई.डी.आई.वी. अल्मोड़ा' के नाम में संदेय होगा, लिखा है । इसलिए, नियोक्ता ने स्वयं ही विभिन्न स्थानों पर प्रतिभूति को डिमांड ड्राफ्ट के रूप में जमा किए जाने के लिए कहा था । यद्यपि दस्तावेजों का बारीकी से परिशीलन किए जाने पर यह प्रकट होता है कि वास्तव में डिमांड ड्राफ्ट 'ई.ई.पी.आई.यू. अल्मोड़ा-2' के नाम में दिया जाना है और निश्चित रूप से याची द्वारा त्रुटि कारित की गई है, किंतु यहां पर यह भी कहा जाना चाहिए कि प्रत्यर्थी/नियोक्ता को भी अर्ह बोलीदाताओं से विशेष विवरण के बारे में पूछे जाते समय स्पष्ट जानकारी नहीं थी । इस न्यायालय ने एल्सटॉम हाइड्रो फ्रांस बनाम टेहरी हाइड्रो विकास निगम और एक अन्य वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है कि बोली के दस्तावेज, जो किसी अधिसंभाव्य बोलीदाता से विवरण की अपेक्षा करते हैं, स्पष्ट और असंदिग्ध होने चाहिए । इस मामले में वे स्पष्ट नहीं हैं । (पैरा 8 और 9)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	ए. आई. आर. 2009 उत्तराखंड 61 : **एल्सटॉम हाइड्रो फ्रांस** बनाम **टेहरी हाइड्रो विकास निगम और एक अन्य** ।	9

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2019 की प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 3667.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से	श्री डी. एस. पाटनी (वरिष्ठ अधिवक्ता), जिनकी सहायता श्री धर्मेन्द्र बर्थवाल द्वारा की गई
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री अनुराग बिसारिया (स्थायी अधिवक्ता), एस. एस. चौहान और सुभाष उपाध्याय

आदेश

याची ने एक सड़क, अर्थात् बिंटोला की तरफ जाने वाली पेपरसेली-बाल्टा मोटर मार्ग, जिसे पेपरसेली-बाल्टा मोटर मार्ग से बिंटोला एम. आर. स्टेज-1 के नाम से जाना जाता है, के निर्माण के लिए कार्य संविदा के लिए आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें याची को तकनीकी रूप से गैर प्रतिक्रियाशील घोषित कर दिया गया और उसकी वित्तीय बोली पर विचार नहीं किया गया ।

2. प्रत्यर्थी प्राधिकारियों को इस न्यायालय द्वारा तारीख 5 दिसंबर, 2019 को पारित अंतरिम आदेश द्वारा बोली की प्रक्रिया में आगे की कार्यवाही करने से निषिद्ध कर दिया गया है । तथापि, इस प्रक्रम तक वित्तीय बोली को खोला जा चुका था । तद्नुसार याची के अनुसार उसकी बोली 30,00,000/- रुपए (तीस लाख रुपए केवल) की है, जो एल.-1 अर्थात् प्रत्यर्थी संख्या 6 की बोली से निम्नतर है ।

3. किंतु इस न्यायालय के समक्ष मुख्य विवाद्यक यह नहीं है । एक मात्र आधार, जिस पर याची को तकनीकी रूप से अनर्ह घोषित किया गया, यह है कि वह बैंक ड्राफ्ट, जो याची द्वारा बोली की प्रतिभूति के रूप में जमा किया गया था, 6,36,000/- रुपए (छह लाख छत्तीस हजार रुपए केवल) की रकम का है और जिसे प्रत्येक बोलीदाता द्वारा दिया जाना आवश्यक था, 'ई.ई.-पी.आई.यू.-अल्मोड़ा-2' के नाम में दिया जाना था । तथापि, याची द्वारा प्रतिभूति के रूप में प्रस्तुत किया गया ड्राफ्ट 'ई.ई.-पी.एम.जी.एस.वाई.-डिवीजन अल्मोड़ा' के नाम में था ।

4. तथापि, याची के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने दलील दी कि बोली के दस्तावेजों में इस बाबत स्पष्टता का अभाव है कि किस नाम में बैंक ड्राफ्ट आहरित किया जाना है । यहां तक कि तारीख 25 नवंबर, 2019 का आदेश, जिसके द्वारा याची को गैर प्रतिक्रियाशील घोषित किया गया, में यह अभिकथित है कि याची को 'ई.ई.-पी.एम.जी.एस.वाई.-पी.डब्ल्यू.डी. - अल्मोड़ा' के नाम में बोली की प्रतिभूति देनी चाहिए थी । अतः, याची का दावा खारिज करते हुए, उसके द्वारा जमा किए गए बैंक डाफ्ट में जो एकमात्र संदिग्धता घोषित की गई, वह यह थी कि याची ने 'अल्मोड़ा' के पश्चात् '2' नहीं लिखा था, यद्यपि उसने अन्य समस्त विवरण प्रस्तुत किए थे ।

5. याची ने अभिकथित किया कि किसी भी परिस्थिति में यह एक अत्यंत सूक्ष्म अनियमितता थी और उसने निवेदन किया कि इस अत्यंत सूक्ष्म अनियमितता का अनदेखा कर दिया जाना चाहिए था ।

6. इसके विपरीत प्रत्यर्थी संख्या 2 से 4 के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि बोली के दस्तावेजों में ही यह स्पष्टतः अभिकथित था कि बोली की प्रतिभूति 'ई.ई.पी.आई.यू. अल्मोड़ा-2' के नाम में दी जानी चाहिए थी और यदि खंड को 'अल्मोड़ा-2' के रूप में उचित प्रकार से उल्लिखित नहीं किया गया, तो प्रपत्र बोली दस्तावेज के खंड 16.1 और 16.2 के अनुसार अस्वीकृत किए जाने योग्य था ।

7. बोली दस्तावेज के परिशीलन से यह प्रतीत होता है कि बोली की प्रतिभूति खंड 16.2 में उपदर्शित थी और उसको 'ई.ई.पी.आई.यू. अल्मोड़ा-2' के नाम में दिया जाना था, किंतु याची का दावा खारिज करते हुए यह अभिकथित किया गया कि याची ने बोली की प्रतिभूति 'ई.ई.पी.एम.जी.एस.वाई.पी.डब्ल्यू.डी.-अल्मोड़ा-2' के नाम में नहीं दी है ।

8. याची के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने हमारा ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया कि निविदा विवरणों में एक कालम में डिमांड डाफ्ट को 'ई.एम.डी.' जो 'ई.ई.पी.एम.जी.एस.वाई.डी.आई.वी. अल्मोड़ा' के नाम में संदेय लिखा गया है । इसलिए, नियोक्ता ने स्वयं ही विभिन्न स्थानों पर प्रतिभूति को डिमांड ड्राफ्ट के रूप में आहरित किए जाने के लिए कहा

था । यद्यपि दस्तावेजों का बारीकी से परिशीलन किए जाने पर यह प्रकट होता है कि वास्तव में डिमांड ड्राफ्ट 'ई.ई.पी.आई.यू. अल्मोड़ा-2' के नाम में दिया जाना था और निश्चित रूप से याची द्वारा त्रुटि कारित की गई, किंतु यहां पर यह भी कहा जाना चाहिए कि प्रत्यर्थी/नियोक्ता को भी अर्ह बोलीदाताओं से विशेष विवरण के बारे में पूछे जाते समय स्पष्ट जानकारी नहीं थी ।

9. इस न्यायालय ने **एल्सटॉम हाइड्रो फ्रांस** बनाम **टेहरी हाइड्रो विकास निगम और एक अन्य**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है कि बोली दस्तावेज, जो किसी अधिसंभाव्य बोलीदाता से विवरण की अपेक्षा करते हैं, स्पष्ट और असंदिग्ध होने चाहिए । इस मामले में वे स्पष्ट नहीं हैं ।

10. उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए यह रिट याचिका मंजूर की जाती है । निविदा तकनीकी मूल्यांकन समिति/प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित तारीख 25 नवंबर, 2019 के आदेश को एतद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किया जाता है ।

11. तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्यर्थी प्राधिकारी याची की बोली को मंजूर करने के दायी हैं । चूंकि यह बोली मात्र एक प्रस्ताव की प्रकृति में है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए प्रत्यर्थी प्राधिकारी सदैव नई बोली की अपेक्षा करने के लिए स्वतंत्र होंगे ।

याचिका मंजूर की गई ।

शु.

---

[1] ए. आई. आर. 2009 उत्तराखंड 61.

शहनवाज अली

बनाम

उत्तराखंड राज्य और अन्य

(2015 की प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 2213)

तारीख 4 मार्च, 2020

न्यायमूर्ति मनोज के. तिवारी

आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 (1955 का 10) – धारा 3 – उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति का रद्दकरण – शासनादेश के खंड 9 के अनुसार उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति के रद्दकरण के पूर्व सक्षम प्राधिकारी द्वारा जांच अपेक्षित थी – अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कोई भी सामग्री उपलब्ध नहीं है कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा जांच की गई – अनुज्ञप्ति का रद्दकरण अनुचित है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि याची जिला हरिद्वार में उचित मूल्य की दुकान का डीलर है । उसकी उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति को जिला आपूर्ति अधिकारी द्वारा कतिपय शिकायतों के आधार पर तारीख 13 फरवरी, 2015 के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया । याची ने इस आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत अपील फाइल की जिसको गढ़वाल खंड के विद्वान् आयुक्त द्वारा तारीख 4 अगस्त, 2015 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया । याची ने उपरोक्त दोनों आदेशों से व्यथित होकर इस न्यायालय की शरण ली । याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय के समान क्षेत्राधिकार प्राप्त एक अन्य न्यायपीठ ने 2003 की प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 4202 में तारीख 31 मार्च, 2014 को दिए गए निर्णय में इसी प्रकार के एक विवाद को निर्णीत किया और जो अभिनिर्धारित किया गया, वह इस प्रकार है, "निर्विवाद रूप से प्रश्नगत उचित मूल्य की दुकान जिला उधम सिंह नगर के जशपुर के ग्राम वीरपुरी की ग्रामसभा के अधिक्षेत्र के अंतर्गत स्थित

है । इसमें कोई विवाद नहीं है कि अभिकथित शिकायत कभी भी ग्राम पंचायत की प्रशासनिक समिति के समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई और तत्पश्चात् ग्राम पंचायत की आम सभा के समक्ष चर्चा के लिए प्रस्तुत की गई और न ही ग्राम पंचायत की आम सभा ने शासनादेश के खंड 9 में उपबंधित प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए उस पर कोई विनिश्चय किया । आक्षेपित आदेश जिला आपूर्ति अधिकारी द्वारा पारित किया गया था । विद्वान् मुख्य स्थायी काउंसेल श्री ए. के. जोशी ने निवेदन किया कि विधि अनुसार नए सिरे से कार्यवाही की जाएगी और तत्पश्चात् याची के विरुद्ध फाइल की गई अभिकथित शिकायत पर समुचित आदेश पारित किया जाएगा । उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए आक्षेपित आदेश को विधि की दृष्टि में मान्य नहीं ठहराया जा सकता, इसलिए तारीख 16 अक्तूबर, 2012 और 23 मार्च, 2013 के दोनों आक्षेपित आदेशों को एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है । रिट याचिका मंजूर की जाती है ।" वर्तमान मामले में तारीख 15 अक्तूबर, 2005 के शासनादेश के खंड 9 में अधिकथित प्रक्रिया का अनुसरण भी याची की उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति निरस्त किए जाने के पूर्व नहीं किया गया है । (पैरा 6 और 7)

आरंभिक रिट अधिकारिता : 2015 की प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 2213.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री सिद्धार्थ सिंह

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री प्रदीप हरिया और विवेक पाठक

आदेश

याची जिला हरिद्वार में उचित मूल्य की दुकान का डीलर है । उसकी उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति को जिला आपूर्ति अधिकारी द्वारा कतिपय शिकायतों के आधार पर तारीख 13 फरवरी, 2015 के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया था । याची ने इसी आदेश के विरुद्ध

प्रस्तुत अपील फाइल की जिसको गढ़वाल खंड के विद्वान् आयुक्त द्वारा तारीख 4 अगस्त, 2015 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया । याची ने उपरोक्त दोनों आदेशों से व्यथित होकर इस न्यायालय की शरण ली है ।

2. याची के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि तारीख 15 अक्तूबर, 2005 के शासनादेश में समाविष्ट उपबंधों का अतिक्रमण किया गया है । उन्होंने आगे निवेदन किया कि उपरोक्त शासनादेश में वे मार्गदर्शक सिद्धांत समाविष्ट हैं जिनका अनुसरण किसी उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति को निलंबित/निरस्त किए जाने के पूर्व किया जाना अपेक्षित होता है । उन्होंने आगे निवेदन किया कि इस शासनादेश में रद्दकरण आदेश के विरुद्ध अपील के अनुतोष के लिए भी उपबंधित किया गया है । याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा अपने निवेदनों में इस बात पर जोर दिया गया कि तारीख 15 अक्तूबर, 2005 के शासनादेश के खंड 9 के निबंधनों के अनुसार किसी उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति को निरस्त किए जाने के पूर्व संबद्ध ग्राम पंचायत की प्रशासनिक समिति द्वारा जांच किया जाना आवश्यक होता है, जो वर्तमान मामले में नहीं की गई ।

3. याची के विद्वान् काउंसेल के अनुसार तारीख 15 अक्तूबर, 2005 के शासनादेश के खंड 9 में प्रक्रिया अधिकथित की गई है और इस प्रक्रिया के अंतर्गत यह उपबंधित किया गया है कि उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति के विरुद्ध कोई शिकायत प्राप्त होने पर संबद्ध ग्राम पंचायत की प्रशासनिक समिति द्वारा जांच कराई जानी चाहिए और तत्पश्चात् प्रशासनिक समिति की रिपोर्ट को अन्य सामग्री के साथ ग्राम सभा के समक्ष उनकी बैठक में प्रस्तुत किया जाएगा ।

4. याची ने रिट याचिका के पैरा 14 में विनिर्दिष्ट रूप से अभिवाक् किया है कि अभिलेख पर प्रशासनिक समिति के गठन के संबंध में कोई भी साक्ष्य उपस्थित नहीं है और उन्होंने आगे अभिवाक् किया कि अभिलेख पर इस बात को साबित करने के लिए ऐसा कुछ भी उपलब्ध नहीं है जिसके आधार यह कहा जा सके कि कोई जांच संचालित की गई थी या जांच कार्यवाही में भाग लेने के लिए याची को कोई सूचना भेजी गई थी या अवसर प्रदान किया गया था ।

5. प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 की तरफ से जिला आपूर्ति अधिकारी द्वारा फाइल किए गए खंडन शपथपत्र के पैरा 8 में रिट याचिका में किए गए अभिवाकों का स्पष्ट उत्तर दिया गया है । अत: इस न्यायालय के समक्ष कोई अन्य विकल्प नहीं है सिवाय रिट याचिका के पैरा 14 में किए गए प्रकथन को सही प्रतीत करने के ।

6. इस न्यायालय के समान क्षेत्राधिकार प्राप्त एक न्यायपीठ ने 2003 की प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 4202 में तारीख 31 मार्च, 2014 को दिए गए निर्णय में इसी प्रकार के एक विवाद को निर्णीत किया और जो अभिनिर्धारित किया गया, वह इस प्रकार है :-

> "निर्विवाद रूप से प्रश्नगत उचित मूल्य की दुकान जिला उधम सिंह नगर के जशपुर के ग्राम वीरपुरी की ग्रामसभा के अधिक्षेत्र के अंतर्गत स्थित है । इसमें कोई विवाद नहीं कि अभिकथित शिकायत कभी भी ग्राम पंचायत की प्रशासनिक समिति के समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई और तत्पश्चात् ग्राम पंचायत की आम सभा के समक्ष चर्चा के लिए प्रस्तुत की गई और न ही ग्राम पंचायत की आम सभा ने शासनादेश के खंड 9 में उपबंधित प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए उस पर कोई विनिश्चय किया । आक्षेपित आदेश जिला आपूर्ति अधिकारी द्वारा पारित किया गया था । विद्वान् मुख्य स्थायी काउंसेल श्री ए. के. जोशी ने निवेदन किया कि विधि अनुसार नए सिरे से कार्यवाही की जाएगी और तत्पश्चात् याची के विरुद्ध फाइल की गई अभिकथित शिकायत पर समुचित आदेश पारित किया जाएगा । उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए आक्षेपित आदेश को विधि की दृष्टि में मान्य नहीं ठहराया जा सकता, इसलिए तारीख 16 अक्तूबर, 2012 और 23 मार्च, 2013 के दोनों आक्षेपित आदेशों को एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है । रिट याचिका मंजूर की जाती है ।"

7. वर्तमान मामले में भी तारीख 15 अक्तूबर, 2005 के शासनादेश के खंड 9 में अधिकथित प्रक्रिया का अनुसरण याची की उचित मूल्य की दुकान की अनुज्ञप्ति को निरस्त किए जाने के पूर्व नहीं किया गया है ।

8. तद्नुसार रिट याचिका मंजूर की जाती है । हरिद्वार के जिला आपूर्ति अधिकारी द्वारा तारीख 13 फरवरी, 2015 और तारीख 4 अगस्त, 2015 को गढ़वाल खंड के आयुक्त द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों को अभिखंडित किया जाता है । तथापि, यह आदेश सक्षम प्राधिकारी को याची के संबंध में विधि अनुसार नया आदेश पारित करने से प्रवारित नहीं करेगा ।

याचिका मंजूर की गई ।

शु.

(2020) 1 सि. नि. प. 625 **उत्तराखंड**

रुचि सक्सेना

बनाम

सुनील सक्सेना

(2015 की प्रथम अपील संख्या 91)

तारीख 26 अप्रैल, 2019

न्यायमूर्ति सुधांशु धूलिया और न्यायमूर्ति रमेश चंद्र खुलबे

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 और 35क] – विवाह-विच्छेद की डिक्री के विरुद्ध अपील – पत्नी का अभिवाक् कि पति ने कपटपूर्वक उससे बहाना करके कि वह उसके नाम में कतिपय संपत्ति का अंतरण कर रहा है, हस्ताक्षर अभिप्राप्त कर लिए और विवाह-विच्छेद की याचिका फाइल कर दी – जब पत्नी न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित थी, उसने अपना परीक्षण शपथपत्र के माध्यम से फाइल किया और उसी दिन प्रतिपरीक्षा के लिए भी उपस्थित थी, तो उसका उपरोक्त अभिवाक् आधारहीन और परेशान करने वाला है – विवाह-विच्छेद की डिक्री न्यायत: पारित की गई और अपील 25,000/- रुपए की लागत अधिरोपित करते हुए खारिज कर दी गई ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के लिए अपीलार्थी/पत्नी द्वारा जिन आधारों का अवलंब लिया गया, वे परित्याग और क्रूरता से संबंधित हैं । प्रत्यर्थी/पति ने अधूरे संकल्प के साथ अपना लिखित कथन फाइल किया जिसके द्वारा उसने मुख्यत: वादपत्र के अभिकथनों से इनकार किया । तत्पश्चात् अपीलार्थी/पत्नी ने अपनी मुख्य परीक्षा में तारीख 4 अप्रैल, 2015 को शपथपत्र फाइल किया । अपीलार्थी न्यायालय में उपस्थित थी और उसी दिन प्रतिवादी को अपीलार्थी की प्रतिपरीक्षा के लिए निर्देशित किया गया । प्रतिवादी ने अपीलार्थी/वादी की प्रतिपरीक्षा से इनकार कर दिया । कोई अन्य साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया और अंतत: वाद तारीख 13 अप्रैल, 2015 को डिक्री कर दिया गया । तत्पश्चात्, अपीलार्थी/पत्नी ने इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान प्रथम अपील इस आधार पर फाइल की कि उसके पति ने वास्तव में उसके हस्ताक्षर इस बहाने के आधार पर अभिप्राप्त कर लिए थे कि वह उसके नाम में किसी संपत्ति का अंतरण करेगा और उसने कभी भी विवाह-विच्छेद के लिए कोई वाद फाइल ही नहीं किया । यह प्रथम अपील अपीलार्थी पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है । इस मामले के विस्मयकारी तथ्य यह है कि विवाह-विच्छेद के लिए वाद किसी और के द्वारा नहीं बल्कि अपीलार्थी द्वारा स्वमेव संस्थित कराया गया था । यह वाद तारीख 13 अप्रैल, 2015 के आदेश द्वारा देहरादून के परिवार न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा डिक्री कर दिया गया था, जिसके विरुद्ध वर्तमान अपील फाइल की गई । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस मामले में हमने प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल से अनुरोध किया था कि वे उन वकीलों से अनुदेश प्राप्त कर लें जिन्होंने निचले न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का प्रतिनिधित्व किया था । वे (निचले न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का प्रतिनिधित्व करने वाले वकील) भी इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए । जैसाकि हमने वर्णित किया है, तारीखों के उपरोक्त क्रम के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह न्यायालय मामले की गहराई से जांच करना चाहता था और इस बात का पता लगाना चाहता था कि यह

अपील क्यों फाइल की गई । अपीलार्थी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष जिस एकमात्र आधार का आश्रय लिया गया, वह यह है कि उसने विवाह-विच्छेद के लिए कोई वाद कभी फाइल नहीं किया और उसके हस्ताक्षर कपट द्वारा अभिप्राप्त कर लिए गए हैं । यद्यपि यह स्वमेव अपीलार्थी द्वारा ही फाइल की गई अपील है, किंतु इस अपील के फाइल किए जाने के पश्चात् अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष इस मामले की पैरवी नहीं की । इस मामले में इस न्यायालय द्वारा दो न्यायमित्र नियुक्त किए गए हैं । अत्यधिक सावधानीवश जो आदेश तारीख 13 मार्च, 2019 को पारित किया गया था वही आदेश अपीलार्थी को देहरादून के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा सूचना की तामीली के लिए भी पारित किया गया और देहरादून के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अंतत: अपीलार्थी पर तारीख 28 मार्च, 2019 को सूचना की तामीली कर दी । इसलिए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अपीलार्थी को इस बाबत सूचना थी कि उसके द्वारा इस न्यायालय के समक्ष फाइल की गई कार्यवाही वर्तमान में लंबित है और फिर भी अपीलार्थी उपस्थित नहीं हुई और न ही उसके द्वारा अपने अधिवक्ता को कोई अनुदेश ही दिए गए । अत्यंत दुख के साथ हमको यह कहना पड़ रहा है कि अपीलार्थी ने निचले न्यायालय के समक्ष वादी की हैसियत में और इस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी की हैसियत में न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया है । इस न्यायालय के समक्ष उसका अभिवाक् यह है कि उसके हस्ताक्षर कपट द्वारा अभिप्राप्त कर लिए गए थे और उसने निचले न्यायालय के समक्ष कोई याचिका फाइल नहीं की थी । अभिलेख के आधार पर यह असत्य और परेशान करने वाले अभिवाक् हैं । ऐसा इसलिए है क्योंकि निचले न्यायालय के आदेशपत्र से यह स्पष्टत: दर्शित होता है कि अपीलार्थी निचले न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित थीं और उसने अपनी मुख्य परीक्षा शपथपत्र पर तारीख 4 अप्रैल, 2015 को फाइल की थी और उसी दिन वह प्रतिपरीक्षा के लिए भी उपस्थित थी । यह एक अन्य मामला है कि उस दिन उसकी प्रतिपरीक्षा नहीं की गई । यह स्पष्ट है कि इस मामले में पक्षों के मध्य दुरभिसंधि रही होगी, जो कि चिंता का विषय है, किंतु निश्चित रूप से यह ऐसा मामला नहीं है

जैसाकि इस न्यायालय के समक्ष दर्शित किया जा रहा है कि वादी/अपीलार्थी ने निचले न्यायालय के समक्ष कोई याचिका फाइल नहीं की थी, जैसाकि उसके द्वारा अभिकथित किया गया है । यह पूर्णत: असत्य दावा है । इन बातों को ध्यान में रखते हुए, यह प्रथम अपील खारिज की जाती है । हमने निचले न्यायालय के आदेश का परिशीलन किया । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अंतर्गत और वादपत्र और साथ ही लिखित कथन में किए गए प्रकथनों को दृष्टि में रखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलार्थी द्वारा निचले न्यायालय के समक्ष अपनी मुख्य परीक्षा में क्रूरता और साथ ही परित्याग के अभिकथन और इस बात को भी ध्यान में रखते हुए कि उसकी प्रतिपरीक्षा प्रत्यर्थी और प्रतिवादी द्वारा नहीं की गई, निचले न्यायालय के समक्ष अन्य कोई विकल्प नहीं था मात्र इसके कि अपीलार्थी/वादी को विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान कर दी जाए और इसलिए हम तारीख 13 अप्रैल, 2015 की डिक्री में मध्यक्षेप करने का कोई आधार नहीं पाते । (पैरा 12, 13, 14 और 15)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की प्रथम अपील संख्या 91.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन प्रथम अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री एस. आर. एस. गिल (न्यायमित्र) और मनीष अरोड़ा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री पवन मिश्रा

आदेश

यह प्रथम अपील अपीलार्थी पत्नी द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है । इस मामले के विस्मयकारी तथ्य यह है कि विवाह-विच्छेद के लिए वाद किसी और के द्वारा नहीं बल्कि अपीलार्थी द्वारा स्वमेव संस्थित कराया गया था । यह वाद तारीख 13 अप्रैल, 2015 के आदेश द्वारा देहरादून के परिवार न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा (2015 के वाद संख्या 145, श्रीमती रुचि सक्सेना बनाम श्री सुनील सक्सेना में) डिक्री कर दिया गया था ।

2. विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के लिए अपीलार्थी/पत्नी द्वारा जिन आधारों का अवलंब लिया गया है, वे परित्याग और साथ ही क्रूरता से संबंधित हैं । प्रत्यर्थी/पति ने अधूरे संकल्प के साथ अपना लिखित कथन फाइल किया जिसके द्वारा उसने मुख्यत: वादपत्र के अभिकथनों से इनकार किया । तत्पश्चात् अपीलार्थी/पत्नी ने अपनी मुख्य परीक्षा में तारीख 4 अप्रैल, 2015 को शपथपत्र फाइल किया । अपीलार्थी न्यायालय में उपस्थित थी और उसी दिन प्रतिवादी को अपीलार्थी की प्रतिपरीक्षा करने के लिए निर्देशित किया गया । प्रतिवादी ने अपीलार्थी/वादी की प्रतिपरीक्षा से इनकार कर दिया । कोई अन्य साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया और अंतत: वाद तारीख 13 अप्रैल, 2015 को डिक्री कर दिया गया ।

3. अब अपीलार्थी/पत्नी ने इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान प्रथम अपील इस आधार पर फाइल की है कि उसके पति ने वास्तव में उसके हस्ताक्षर इस बहाने के आधार पर अभिप्राप्त कर लिए थे कि वह उसके नाम में किसी संपत्ति का अंतरण करेगा और उसने कभी भी विवाह-विच्छेद के लिए कोई वाद फाइल ही नहीं किया ।

4. इस मामले में विपक्षी/पति को तारीख 4 सितंबर, 2015 को विलंब को क्षमा किए जाने के लिए फाइल किए गए आवेदन पर सूचनाएं भेजी गई थीं । तारीख 16 अक्तूबर, 2015 की कार्यालय रिपोर्ट से यह दर्शित होता है कि प्रत्यर्थी को सूचनाएं रजिस्ट्रीकृत डाक और साथ ही प्रक्रिया तामील करने वाले द्वारा 'दस्ती' तामील किए जाने के प्रयोजनार्थ भेजी गई थीं । अपीलार्थी का प्रतिनिधित्व आरंभिकत: अधिवक्ता श्री मनीष अरोड़ा द्वारा किया गया । प्रत्यर्थी पर तामीली के पश्चात् उसकी तरफ से अधिवक्ता श्री पवन मिश्रा उपस्थित हुए, जो इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हैं । न्यायालय ने तारीख 26 अक्तूबर, 2015 को दोनों काउंसेलों की उपस्थिति में प्रत्यर्थी को विलंब क्षमा किए जाने के लिए प्रयोजनार्थ प्रस्तुत किए गए आवेदन के विरुद्ध आक्षेप फाइल किए जाने के लिए तारीख 18 नवंबर, 2015 तक का समय प्रदान कर दिया । तत्पश्चात् प्रत्यर्थी द्वारा विलंब क्षमा किए जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किए गए आवेदन के विरुद्ध आक्षेप फाइल किए गए और तारीख 20

नवंबर, 2015 को इस न्यायालय द्वारा विलंब को क्षमा कर दिया गया । तारीख 1 दिसंबर, 2015 को इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा मामले को मध्यस्थता के लिए भेजा गया । मध्यस्थ द्वारा तारीख 17 दिसंबर, 2015 को प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के परिशीलन से जो दर्शित होता है, वह निम्नलिखित है :-

> ".....मामले पर मध्यस्थता के लिए आज सुनवाई की गई ।
>
> आज सुनील सक्सेना उपस्थित हैं और श्रीमती रुचि सक्सेना अनुपस्थित हैं, किंतु अपीलार्थी श्रीमती रुचि सक्सेना के काउंसेल उपस्थित हैं, श्रीमती रुचि सक्सेना की अनुपस्थिति में आज मध्यस्थता किया जाना संभव नहीं है । तद्नुसार मामले में आगे मध्यस्थता के लिए तारीख 25 फरवरी, 2016 निर्धारित की जाती है ।
>
> रिपोर्ट सेवा में प्रस्तुत है ।"

5. तत्पश्चात् मामले पर तारीख 25 फरवरी, 2016 को मध्यस्थ/ अधिवक्ता द्वारा मध्यस्थता के प्रयोजनार्थ पुन: विचार किया गया । मध्यस्थ द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट से जो दर्शित होता है, वह निम्नलिखित है :-

> "मामले पर मध्यस्थता के प्रयोजनार्थ आज विचार किया गया ।
>
> आज दोनों पक्ष अनुपस्थित हैं, किंतु अपीलार्थी श्रीमती रुचि सक्सेना के काउंसेल उपस्थित हैं । आज दोनों पक्षों की अनुपस्थिति के कारण मध्यस्थता किया जाना संभव नहीं है । इस मामले में मध्यस्थता के लिए आगे पुन: समय निर्धारित किया जाना अपेक्षित है ।
>
> तद्नुसार अपीलार्थी के काउंसेल के अनुरोध पर इस मामले में आगे मध्यस्थता की कार्यवाही के लिए तारीख 10 मार्च, 2016 निर्धारित की जाती है ।
>
> रिपोर्ट सेवा में प्रस्तुत है ।"

6. मध्यस्थ/अधिवक्ता द्वारा तारीख 10 मार्च, 2016 प्रस्तुत की गई अगली रिपोर्ट से जो दर्शित होता है, वह निम्नलिखित है :-

"मामले में मध्यस्थता के लिए आज सुनवाई की गई ।

आज श्रीमती रुचि सक्सेना उपस्थित हैं और श्री सुनील सक्सेना अनुपस्थित हैं, किंतु अपीलार्थी श्रीमती रुचि सक्सेना भी आगे मध्यस्थता के लिए इच्छुक नहीं है ।

चूंकि दोनों पक्ष इस मामले में आज किसी भी निपटारे पर पहुंच पाने में विफल रहे हैं । तद्नुसार इस प्रक्रम पर मध्यस्थता की कार्यवाहियां विफल हो जाने के कारण बंद की जाती हैं ।

इस बाबत रिपोर्ट माननीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की जाए ।

रिपोर्ट सेवा में प्रस्तुत है ।"

7. जब मामला इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ के समक्ष तारीख 3 जुलाई, 2017 को प्रस्तुत हुआ, तो अपीलार्थी के काउंसेल उपस्थित नहीं थे और इसलिए इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अधिवक्ता सुश्री खुशबू तिवारी शर्मा को इस मामले में न्यायमित्र के रूप में नियुक्त कर दिया । तत्पश्चात्, तारीख 10 अगस्त, 2017 को इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने निम्नलिखित आदेश पारित किया :-

"अपीलार्थी की ओर से नियुक्त न्यायमित्र सुश्री खुशबू तिवारी शर्मा उपस्थित हैं । प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्ता श्री पवन मिश्रा उपस्थित हैं ।

फाइल की नकल तैयार है । अपीलार्थी की तरफ से नियुक्त विद्वान् न्यायमित्र से अनुरोध किया गया कि वे फाइल की नकल प्राप्त कर लें ।

इस मामले को दो सप्ताह के पश्चात् सूचीबद्ध किया जाए ।"

8. इस मामले को तारीख 29 अगस्त, 2017 को सुनवाई के प्रयोजनार्थ ग्रहण किया गया था । इस न्यायालय ने तारीख 3 अक्तूबर,

2017 को न्यायमित्र को परिवर्तित कर दिया और अधिवक्ता श्री एस. आर. एस. गिल को इस मामले में न्यायमित्र के रूप में नियुक्त कर दिया । इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 3 अक्तूबर, 2017 को पारित आदेश निम्नलिखित हैं :-

> "अधिवक्ता श्री विपुल शर्मा अपीलार्थी की न्यायमित्र सुश्री खुशबू तिवारी शर्मा की तरफ से उपस्थित हैं ।
>
> प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्ता श्री पवन मिश्रा उपस्थित हैं ।
>
> न्यायमित्र की तरफ से मामले को स्थगित किए जाने के लिए अनुरोध किया गया । न्यायमित्र से यह अपेक्षा की जाती है कि वे प्रत्येक सुनवाई पर उपस्थित रहें ।
>
> तद्नुसार अधिवक्ता श्री एस. आर. एस. गिल को सुश्री खुशबू तिवारी शर्मा के स्थान पर अपीलार्थी की तरफ से न्यायालय की सहायता के लिए न्यायमित्र नियुक्त किया जाता है । रजिस्ट्री को निर्देशित किया जाता है कि वे फाइल की नकल तैयार करें और नवनियुक्त न्यायमित्र को अगले दिन तक उपलब्ध करा दें ।"

9. चूंकि तारीख 29 नवंबर, 2017 को इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ का यह दृष्टिकोण था कि मामले का निपटारा लोक अदालत में किया जा सकता है, इसलिए मामले को तारीख 9 दिसंबर, 2017 को आयोजित होने वाली लोक अदालत को निर्दिष्ट कर दिया गया ।

10. इस न्यायालय को सूचित किया गया है कि कोई भी पक्ष लोक अदालत के समक्ष, जब उसका आयोजन किया गया, उपस्थित नहीं था ।

11. चूंकि, न्यायमित्र की हैसियत में अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री एस. आर. एस. गिल को अपीलार्थी द्वारा कोई अनुदेश नहीं दिए गए थे और वे भी अपीलार्थी के संपर्क में नहीं थे, इसलिए न्यायालय ने अपीलार्थी को तारीख 13 अगस्त, 2018 को पुन: सूचना भेजी । चूंकि इस दौरान निचले न्यायालय का अभिलेख खोजा नहीं जा सका था, इसलिए इस न्यायालय ने तारीख 11 मार्च, 2019 को रजिस्ट्री को निर्देशित किया कि वे निचले अदालत के अभिलेख की खोज

करे और उसे इस न्यायालय के समक्ष तारीख 13 मार्च, 2019 को प्रस्तुत करे । इस न्यायालय ने तारीख 13 मार्च, 2019 को निम्नलिखित आदेश पारित किया :-

"अपीलार्थी की तरफ से न्यायमित्र श्री एस. आर. एस. गिल उपस्थित हैं ।

प्रत्यर्थी की तरफ से अधिवक्ता श्री पवन मिश्रा उपस्थित हैं ।

वर्तमान अपीलार्थी द्वारा विवाह के विघटन के लिए वाद फाइल किया गया था, जो तारीख 13 अप्रैल, 2015 के आदेश द्वारा डिक्री कर दिया गया था । अब अपीलार्थी ने तारीख 13 अप्रैल, 2015 के आदेश को इस न्यायालय के समक्ष इस आधार पर चुनौती दी है कि उसने इस प्रकार का कोई वाद कभी फाइल नहीं किया और उसके हस्ताक्षर उसके पति द्वारा छल से प्राप्त किए गए थे ।

अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं चूंकि वे एक दांडिक मामले के संबंध में पुलिस अभिरक्षा में हैं । इस कारणवश अधिवक्ता श्री एस. आर. एस. गिल को मामले में न्यायमित्र के रूप में नियुक्त किया गया ।

तत्पश्चात् अपीलार्थी को इस न्यायालय द्वारा तारीख 13 अगस्त, 2018 के आदेश द्वारा अन्य काउंसेल नियुक्त करने के लिए सूचना भी जारी की गई थी, जो अभी तक तामील नहीं हुई है ।

हम चाहते हैं कि इसके पहले कि हम इस मामले में आगे की कार्यवाही आरंभ करें, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी, दोनों हमारे समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हों ।

प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री पवन मिश्रा ने एक वचन दिया है कि प्रत्यर्थी सूचीबद्धता की अगली तारीख, जो तारीख 27 मार्च, 2019 है, पर इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं होगा ।

जहां तक अपीलार्थी के संबंध में हमारा विचार है कि न्यायमित्र श्री एस. आर. एस. गिल को अपीलार्थी से संपर्क करने और उसको सूचित करने के लिए प्राधिकृत कर दिया जाए ।

तथापि, अत्यधिक सावधानीवश हम यह निर्देशित करते हैं कि अपीलार्थी को उसके द्वारा उपलब्ध कराए गए पते पर देहरादून के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा सूचना तामील की जाए ।

इस मामले को तारीख 27 मार्च, 2019 को दैनिक वाद सूची में सूचीबद्ध किया जाए ।"

12. इस मामले में हमने प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल से अनुरोध किया था कि वे उन वकीलों से अनुदेश प्राप्त करें जिन्होंने निचले न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का प्रतिनिधित्व किया था । वे (निचले न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का प्रतिनिधित्व करने वाले वकील) भी इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए ।

13. जैसाकि हमने वर्णित किया है, तारीखों के उपरोक्त क्रम के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह न्यायालय मामले की गहराई से जांच करना चाहता है और इस बात का पता लगाना चाहता है कि यह अपील क्यों फाइल की गई । अपीलार्थी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष जिस एकमात्र आधार का आश्रय लिया गया, वह यह है कि उसमें विवाह-विच्छेद के लिए कोई वाद कभी फाइल नहीं किया और उसके हस्ताक्षर कपट द्वारा अभिप्राप्त कर लिए गए थे । यद्यपि यह स्वमेव अपीलार्थी द्वारा ही फाइल की गई अपील है, किंतु इस अपील के फाइल किए जाने के पश्चात् अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष इस मामले की पैरवी नहीं की । इस मामले में इस न्यायालय द्वारा दो न्यायमित्र नियुक्त किए गए । अत्यधिक सावधानीवश, जो आदेश तारीख 13 मार्च, 2019 को पारित किया गया था, वही आदेश अपीलार्थी को देहरादून के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा सूचना की तामीली के लिए भी पारित किया गया और देहरादून के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अंततः अपीलार्थी पर तारीख 28 मार्च, 2019 को सूचना की तामीली कर दी थी । इसलिए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अपीलार्थी को इस बाबत सूचना थी कि उसके द्वारा इस न्यायालय के समक्ष फाइल की गई कार्रवाई वर्तमान में लंबित हो चुकी है और फिर भी अपीलार्थी उपस्थित नहीं हुई और न ही उसके द्वारा अपने अधिवक्ता को कोई अनुदेश दिए गए । अत्यंत दुख के साथ हमको यह कहना पड़ रहा है कि

अपीलार्थी ने निचले न्यायालय के समक्ष वादी की हैसियत में और इस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी की हैसियत में न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया । इस न्यायालय के समक्ष उसका अभिवाक् यह है कि उसके हस्ताक्षर कपट द्वारा अभिप्राप्त कर लिए गए थे और उसने निचले न्यायालय के समक्ष कोई याचिका फाइल नहीं की थी । अभिलेख के आधार पर यह असत्य और परेशान करने वाले अभिवाक् हैं ।

14. ऐसा इसलिए है क्योंकि निचले न्यायालय के आदेशपत्र से यह स्पष्टत: दर्शित होता है कि अपीलार्थी निचले न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित थी और उसने अपनी मुख्य परीक्षा शपथपत्र पर तारीख 4 अप्रैल, 2015 को फाइल की थी और उसी दिन वह प्रतिपरीक्षा के लिए भी उपस्थित थी । यह एक अन्य बात है कि उस दिन उसकी प्रतिपरीक्षा नहीं की गई । यह स्पष्ट है कि इस मामले में पक्षों के मध्य दुरभिसंधि रही होगी, जो कि चिंता का विषय है, किंतु निश्चित रूप से यह ऐसा मामला नहीं है जैसाकि इस न्यायालय के समक्ष दर्शित किया जा रहा है कि वादी/अपीलार्थी ने निचले न्यायालय के समक्ष कोई याचिका फाइल नहीं की, जैसाकि उसके द्वारा अभिकथित किया गया है । यह पूर्णत: असत्य दावा है ।

15. इन बातों को ध्यान में रखते हुए, यह प्रथम अपील खारिज की जाती है । हमने निचले न्यायालय के आदेश का परिशीलन किया । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अंतर्गत और वादपत्र और साथ ही लिखित कथन में किए गए प्रकथनों को दृष्टि में रखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलार्थी द्वारा निचले न्यायालय के समक्ष अपनी मुख्य परीक्षा में लिए गए क्रूरता और साथ ही परित्याग के अभिकथन और इस बात को भी ध्यान में रखते हुए कि उसकी प्रतिपरीक्षा प्रत्यर्थी और प्रतिवादी द्वारा नहीं की गई, निचले न्यायालय के समक्ष अन्य कोई विकल्प नहीं था, मात्र इसके कि अपीलार्थी/वादी को विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान कर दी जाए और इसलिए हम तारीख 13 अप्रैल, 2015 की डिक्री में मध्यक्षेप करने का कोई आधार नहीं पाते ।

16. तथापि, चूंकि अपीलार्थी ने इस न्यायालय की शरण निर्दोष भाव के साथ नहीं ली और वास्तव में उसने एक असत्य और परेशान

करने वाली याचिका फाइल की, इसलिए हम इस प्रथम अपील को 25,000/- (पचीस हजार रुपए केवल) की लागत के साथ खारिज करते हैं, जिसकी वसूली निचले न्यायालय द्वारा विधि अनुसार अपीलार्थी से की जाएगी ।

17. निचले न्यायालय का अभिलेख संबद्ध न्यायालय को मामले में आगे के अनुपालन के लिए भेज दिया जाए ।

अपील खारिज की गई ।

शु.

(2020) 1 सि. नि. प. 636 गुजरात

सलीमबीन बसीरभाई हाडी

बनाम

मुसन्नभाई रहीमभाई भंडारी

(2019 का नियमित/विशेष सिविल आवेदन संख्या 773)

तारीख 4 अप्रैल, 2019

न्यायमूर्ति ए. जे. शास्त्री

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 39, नियम 1 और 2 – स्थायी व्यादेश की विधिमान्यता – स्थायी व्यादेश प्रदान करने से इनकार – याची द्वारा प्रतिवादियों द्वारा उसकी संपत्ति के सामने मात्र 10 से 12 फीट चौड़े मार्ग के दूसरी तरफ किए जा रहे दुकानों के वाणिज्यिक निर्माण के प्रयोजनार्थ दुकानदारों के लिए पर्याप्त पार्किंग स्थान की व्यवस्था न किए जाने के आधार पर व्यादेश की ईप्सा किया जाना – वादी द्वारा दावे के समर्थन में पड़ोसियों के शपथपत्र या वादग्रस्त संपत्ति के स्वामित्व के संबंध में कोई दस्तावेज प्रस्तुत न किया जाना – व्यादेश प्रदान नहीं किया जा सकता ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि याची वादग्रस्त संपत्ति का निवासी है, जो उसके दादा अर्थात् अब्दुलभाई के नाम में रजिस्ट्रीकृत

थी । याची ने अपने दादा की मृत्यु के पश्चात् वादग्रस्त संपत्ति की देख-रेख की और उसको बनाए रखा । याची का आगे पक्षकथन यह है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5 ने इस संपत्ति के सामने 10 से 12 फीट चौड़े मार्ग के दूसरी तरफ एक अन्य संपत्ति को क्रय कर लिया और अब वे पुराने मकान को ढहाकर आर. के. प्लाजा के नाम से वाणिज्यिक निर्माण विधि के अधीन अपेक्षित कोई विधिक मंजूरी अभिप्राप्त किए बिना करा रहे हैं । याची का आगे पक्षकथन यह है कि उसने कराए जा रहे अवैध निर्माण को विधिक सूचनाएं जारी करने के द्वारा प्रत्यर्थियों को निषिद्ध करने का प्रयास किया, किंतु जब कोई परिणाम नहीं निकला, तो उसने महुआ के अपर सिविल न्यायाधीश के समक्ष घोषणा और स्थायी व्यादेश के लिए 2017 का नियमित सिविल वाद संख्या 366 फाइल किया और साथ में 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 सपठित धारा 151 के अधीन अंतरिम व्यादेश के लिए आवेदन भी फाइल किया । याची का आगे पक्षकथन है कि उसके द्वारा प्रतिवादियों के रूप में रफीकभाई करीमभाई बगोट और मनसूदभाई जफरभाई मालेक को संयोजित किए जाने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को विचारण न्यायालय द्वारा मंजूर कर लिया गया और साथ ही वादपत्र को संशोधित किए जाने के प्रयोजनार्थ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6, नियम 17 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को भी मंजूर कर लिया गया । विचारण न्यायालय ने इस आवेदन को प्रत्युत्तर शपथपत्र और खंडन शपथपत्र पर विचारोपरांत तारीख 21 फरवरी, 2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया । याची का पक्षकथन है कि उक्त आदेश के विरुद्ध फाइल किए गए 2018 के सिविल आवेदन संख्या 3 को भी भावनगर (कैम्प महुआ) के विद्वान् चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 20 अप्रैल, 2018 को खारिज कर दिया गया, जो इस रिट याचिका का प्रदर्श 11 है और जिसके विरुद्ध वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि दोनों निचले न्यायालयों ने एक ही स्वर में याची के

विरुद्ध अभिनिर्धारित किया और कोई दस्तावेजी साक्ष्य न पाते हुए किसी भी प्रकार का कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया, इसलिए याची प्रभावित हो गया है । निचले न्यायालय दस्तावेजी साक्ष्य के विश्लेषण के पश्चात् एक ही निष्कर्ष पर पहुंचे कि कोई मामला नहीं बनता । उक्त आदेश का परीक्षण अपीली न्यायालय द्वारा भी उपलब्ध सामग्री के आधार पर किया गया और उन्होंने भी विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से सहमत होते हुए अभिनिर्धारित किया कि कोई मामला नहीं बनता । इस न्यायालय ने विवाद्यक का परीक्षण किया और इस न्यायालय की सुविचारित राय यह है कि निचले न्यायालय ने अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया है और दस्तावेजी साक्ष्य का विश्लेषण करने के पश्चात् निष्कर्ष निकाला है । इसके परिणामस्वरूप निचले न्यायालय और साथ ही अपीली न्यायालय के आदेशों में कोई अवैधता दर्शित नहीं होती । (पैरा 6, 7 और 8)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2013] (2013) 9 एस. सी. सी. 374 = ए. आई. आर. ऑनलाइन 2013 एस. सी. 207 : **समीर सुरेश गुप्ता** बनाम **राहुल कुमार अग्रवाल** । 9

अपीली रिट अधिकारिता : 2019 का नियमित/विशेष सिविल आवेदन संख्या 773.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री एन. के. मजमूदार

प्रत्यर्थी की ओर से .....

आदेश

संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन वर्तमान रिट याचिका महुआ स्थित भावनगर के विद्वान् चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश द्वारा 2018 के प्रकीर्ण सिविल आवेदन संख्या 3 में आवेदन, जिसे प्रदर्श 11 के रूप में संलग्न किया गया है, में तारीख 20 अप्रैल, 2018 को पारित आदेश

को अभिखंडित किए जाने की ईप्सा करते हुए फाइल की गई है ।

2. याची का पक्षकथन यह है कि वह वादग्रस्त संपत्ति का निवासी है, जो उसके दादा अर्थात् अब्दुलभाई के नाम में रजिस्ट्रीकृत थी । याची ने अपने दादा की मृत्यु के पश्चात् वादग्रस्त संपत्ति की देख-रेख की और उसको बनाए रखा । याची का आगे यह पक्षकथन है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5 ने इस संपत्ति के सामने 10 से 12 फीट चौड़े मार्ग की दूसरी तरफ एक अन्य सम्पत्ति को क्रय कर लिया था और अब वे पुराने मकान को ढहाकर आर. के. प्लाजा के नाम से वाणिज्यिक निर्माण विधि के अधीन अपेक्षित कोई विधिक मंजूरी अभिप्राप्त किए बिना कर रहे हैं ।

3. याची का पक्षकथन यह है कि उसने इस प्रकार से किए जा रहे अवैध निर्माण किए जाने के विरुद्ध प्रत्यर्थियों को विधिक सूचनाएं जारी करने के द्वारा निषिद्ध करने का प्रयास किया, तथापि, जब उसके इस प्रयास से कोई परिणाम नहीं निकला, तो उसने महुआ के अपर सिविल न्यायाधीश के समक्ष घोषणा और स्थायी व्यादेश के लिए 2017 का नियमित सिविल वाद संख्या 366 फाइल किया और साथ में 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 1 और 2 सपठित धारा 151 के अधीन अंतरिम व्यादेश के लिए आवेदन भी फाइल किया ।

4. याची का आगे पक्षकथन यह है कि उसके द्वारा प्रतिवादियों के रूप में रफीकभाई करीमभाई बगोट और मनसूदभाई जफरभाई मालेक को संयोजित किए जाने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को विचारण न्यायालय द्वारा मंजूर कर लिया गया था और साथ ही वादपत्र को संशोधित किए जाने के प्रयोजनार्थ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6, नियम 17 के अधीन फाइल किया गया आवेदन भी मंजूर कर लिया गया था । विचारण न्यायालय ने प्रत्युत्तर शपथपत्र और खंडन शपथपत्र पर विचारोपरांत आवेदन को तारीख 21 फरवरी, 2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया । याची का पक्षकथन है कि उक्त आदेश के विरुद्ध फाइल किए गए 2018 के सिविल आवेदन संख्या 3 को भी भावनगर (कैम्प महुआ) के विद्वान् चतुर्थ अपर जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 20 अप्रैल, 2018 को खारिज कर दिया गया, जो इस रिट याचिका का प्रदर्श 11 है और जिसके विरुद्ध वर्तमान कार्यवाही फाइल की गई है ।

5. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता श्री एन. के. मजमूदार ने दृढ़तापूर्वक दलील दी कि दोनों ही निचले न्यायालय इस महत्वपूर्ण पहलू पर विचार करने में असफल रहे कि क्या याची सर्वाधिक प्रभावित पक्ष है और इसलिए उसको वाद फाइल करने का अधिकार प्राप्त है । विद्वान् काउंसेल द्वारा आगे निवेदन किया गया कि दोनों ही निचले न्यायालय अंतरिम व्यादेश आवेदन खारिज करते समय तथ्यों की सारभूत त्रुटियों पर विचार करने में विफल रहे कि प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5 ने उसकी संपत्ति के सामने स्थित संपत्ति 10 से 12 फीट मार्ग छोड़ते हुए क्रय कर ली थी और वे सक्षम स्थानीय प्राधिकरण से बिना किसी विधिमान्य मंजूरी के अवैध वाणिज्यिक निर्माण करा रहे हैं । याची के काउंसेल ने दलील दी कि प्रत्यर्थियों ने दुकानों के स्वामियों को पर्याप्त पार्किंग सुविधाएं उपलब्ध नहीं कराई हैं जिस कारणवश याची को, जिसकी संपत्ति मात्र 10 से 12 फीट की दूरी पर स्थित है, सदैव ही परेशानी का सामना करना पड़ेगा और इसलिए उसने प्रार्थना की कि उसकी याचिका को विचारार्थ ग्रहण किया जाए और प्रत्यर्थी संख्या 1, 2, 4 और 5 को वाणिज्यिक भवन का निर्माण करने से निषिद्ध किए जाने के प्रयोजनार्थ अंतरिम व्यादेश प्रदान किया जाए ।

6. याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने के पश्चात् यह प्रतीत होता है कि दोनों ही निचले न्यायालयों ने एक स्वर में याची के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया और कोई दस्तावेजी साक्ष्य न पाते हुए किसी भी प्रकार का कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया, इसलिए याची प्रभावित हो गया है । निचले न्यायालय दस्तावेजी साक्ष्य के विश्लेषण के पश्चात् एक ही निष्कर्ष पर पहुंचे कि कोई मामला नहीं बनता । इस प्रक्रम पर यह न्यायालय उचित प्रतीत करता है कि विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश के पैराग्राफ संख्या 18 और 19 को प्रत्युत्पादित किया जाए, जो इस प्रकार हैं :-

> "18. मैंने दस्तावेजी साक्ष्य, कागजातों, अभिवचनों और पक्षों द्वारा पेश की गई निर्णयज विधियों का परिशीलन किया । वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि वादी ने वर्तमान वाद प्रतिवादियों को अनधिकृत निर्माण करने

से निषिद्ध करने के लिए फाइल किया । प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन (प्रदर्श-77) के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि महुआ नगरपालिका द्वारा कोई अनुज्ञा प्रदान नहीं की गई है और वादी ने इस तथ्य के समर्थन में प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा प्रतिवादी संख्या 4 को तारीख 29 जून, 2017 और तारीख 1 अगस्त, 2017 को जारी की गई सूचनाओं को प्रस्तुत किया है । वादी द्वारा पेश किए गए दस्तावेजी साक्ष्य पर विचारोपरांत यह स्पष्ट हो जाता है कि वादी ने अपने दादा की संपत्ति पर स्वामित्व के संबंध में कोई भी दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया है, यद्यपि प्रतिवादी संख्या 4 और 5 ने इस विवाद्यक को अपने लिखित कथन, जो इस रिट याचिका के साथ प्रदर्श-79 के रूप में प्रस्तुत किया गया है, में उठाया था, फिर भी वादी ने इस पहलू पर अपने खंडन शपथपत्र, जिसे इस रिट याचिका के साथ प्रदर्श-83 के रूप में प्रस्तुत किया गया है, में एक शब्द का भी उल्लेख नहीं किया है । वादी ने मौखिक दलीलों के दौरान वादग्रस्त संपत्ति के स्वामित्व के संबंध में एक भी शब्द का उल्लेख नहीं किया है कि उसने किस प्रकार से अपने स्वर्गीय दादा की वादग्रस्त संपत्ति की देख-रेख की, यद्यपि वादी को मामले को प्रथमदृष्ट्या साबित किए जाने के प्रयोजनार्थ उसके पैरों पर खड़ा करना था । वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी संख्या 4 और 5 वादग्रस्त संपत्ति पर अनधिकृत निर्माण कर रहे हैं, किंतु वादी ने वाद में अंतर्वलित वादग्रस्त संपत्ति के सही विवरण का उल्लेख नहीं किया है । यहां तक कि वादी ने अपने पक्षकथन को साबित करने के लिए किसी अन्य पड़ोसी या स्थानीय निवासी का कोई शपथपत्र भी प्रस्तुत नहीं किया है । दस्तावेजी साक्ष्य पर विचारोपरांत और मामले के अभिलेख का परिशीलन करने पर यह साबित हो जाता है कि वादी वादग्रस्त संपत्ति, जिसके लिए उसने न्यायालय की शरण अपने मार्ग के अधिकार के संरक्षण और वादग्रस्त संपत्ति के संबंध में निजता के प्रयोजनार्थ ली, के स्वामित्व के संबंध में कोई भी दस्तावेज प्रस्तुत कर पाने में विफल रहा है । मैंने शिव कुमार चड्ढा और अन्य **बनाम** दिल्ली नगर निगम [(1993) 3 एस. सी. सी. 161] वाले मामले का परिशीलन

किया और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित विधिक प्रतिपादना से पूर्णत: सहमत हूं, किंतु वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचारोपरांत मैं ससम्मान निवेदन करता हूं कि उपरोक्त निर्णयज विधि वर्तमान मामले में लागू नहीं होती क्योंकि इस मामले में वादी ने वादग्रस्त संपत्ति का प्रशासक होने का दावा किया है किंतु उसने दस्तावेजी साक्ष्य में वादग्रस्त संपत्ति के स्वामित्व के संबंध में कोई भी दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया है और न ही अपने दादा की वंशावली प्रस्तुत की है । वादी इस बात को साबित कर पाने में भी विफल रहा कि वह किस रीति में वादग्रस्त संपत्ति से संबंधित है और उसके अधिकार किस प्रकार से प्रभावित होंगे यदि अनंतरिम व्यादेश प्रदान नहीं किया जाता ।

19. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचारोपरांत और दस्तावेजी साक्ष्य के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वादी के पक्ष में प्रथमदृष्ट्या कोई मामला नहीं बनता और वादी द्वारा प्रस्तुत किए गए पत्र, जो कागज संख्या 4/1 से 4/7 है, का परिशीलन किए जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वादी ने वादग्रस्त संपत्ति में उसके निवासी होने के संबंध में कोई भी दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया, जैसाकि दावा वादपत्र में किया गया है, इसलिए वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचारोपरांत मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि वादी अपने पक्ष में प्रथमदृष्ट्या मामला साबित कर पाने में सर्वथा विफल रहा है और इसलिए मैं, विवाद्यक संख्या 1 को नकारात्मक में निर्णीत करता हूं । जब वादी द्वारा किसी भी प्रथमदृष्ट्या मामले को साबित ही नहीं किया गया, तो सुविधा का संतुलन भी उसके पक्ष में नहीं होगा और जब उसके पक्ष में सुविधा का संतुलन नहीं है, तो उसको अपूर्णीय क्षति भी नहीं होगी । इसलिए, वादी उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए किसी भी अनंतरिम व्यादेश को प्राप्त करने का हकदार नहीं है, जैसीकि प्रार्थना की गई है और इसलिए बिंदु संख्या 1 से 3 नकारात्मक में निर्णीत किए जाते हैं और मैं न्यायहित में निम्नलिखित आदेश पारित करता हूं ।

आदेश

1. वर्तमान आवेदन, जो इस रिट याचिका का प्रदर्श-5 है, एतद्द्वारा अस्वीकृत किया जाता है ।

2. अन्तिम आदेश तक वादग्रस्त संपत्ति के संबंध में यथास्थिति बनाए रखे जाने के लिए पारित पूर्ववर्ती आदेश, जो इस रिट याचिका का प्रदर्श-31 है, को एतद्द्वारा रिक्त किया जाता है ।

3. लागत के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया जाता ।"

7. उक्त आदेश का परीक्षण अपीली न्यायालय द्वारा भी उपलब्ध सामग्री के आधार पर किया गया और उन्होंने भी विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष से सहमत होते हुए अभिनिर्धारित किया कि कोई मामला नहीं बनता ।

8. इस न्यायालय ने विवाद्यक का परीक्षण किया और इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि निचले न्यायालय ने अपने विवेकाधिकार का प्रयोग किया है और दस्तावेजी साक्ष्य का विश्लेषण करने के पश्चात् निष्कर्ष निकाला है । इसके परिणामस्वरूप निचले न्यायालय और साथ ही अपीली न्यायालय के आदेशों में कोई अवैधता दर्शित नहीं होती ।

9. इसके अतिरिक्त यह न्यायालय असाधारण अधिकारिता के प्रयोग के विवाद्यक पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई मताभिव्यक्ति के प्रति भी जागरूक है, जो **समीर सुरेश गुप्ता** बनाम **राहुल कुमार अग्रवाल**[1] वाले मामले में संसूचित है और इस निर्णय के पैराग्राफ 6 और 7 का अवलंब लेते हुए इस न्यायलय का यह विचार है कि मध्यक्षेप किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई मामला नहीं बनता और वर्तमान याचिका गुणागुण से रहित होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है और तद्नुसार लागत के संबंध में कोई आदेश पारित किए बिना खारिज की जाती है ।

याचिका खारिज की गई ।

शु.

---

[1] (2013) 9 एस. सी. सी. 374 = ए. आई. आर. ऑनलाइन 2013 एस. सी. 207.

(2020) 1 सि. नि. प. 644 गुवाहाटी

अमित कुमार अग्रवाल

बनाम

मां शारदा एंड कंपनी और एक अन्य

(2015 का माध्यस्थम् आवेदन संख्या 22)

तारीख 9 मई, 2019

न्यायमूर्ति सुमन श्याम

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) – धारा 21 – माध्यस्थम् कार्यवाही के आरंभ की सूचना – जब तक कि पक्षों के मध्य अन्यथा रूप से सहमति न हो जाए, धारा 21 के अधीन सूचना का जारी किया जाना माध्यस्थम् कार्यवाही आरंभ किए जाने के प्रयोजनार्थ आवश्यक है – उक्त उपबंध के अननुपालन का प्रभाव माध्यस्थम् कार्यवाही और उस कार्यवाही के अधीन पारित पंचाट का अविधिमान्यकरण होगा ।

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 – धारा 34, 16(2) और 8 – मध्यस्थ की अधिकारिता पर आक्षेप के आधार पर माध्यस्थम् पंचाट इस अभिवाक् के आधार पर अपास्त किया जाना कि भाड़ाक्रय करार के अंतर्गत भाड़े पर लेने वाले द्वारा उठाए गए आक्षेप पक्षों के मध्य सिविल वाद के लंबन के संदर्भ में थे, इसलिए वे आक्षेप धारा 8 के अंतर्गत आते हैं, न कि धारा 16(2) के अंतर्गत – चूंकि 1996 का अधिनियम विशेष विधायन है, इसलिए इसके अंतर्गत उठाए गए आक्षेपों की तुलना सिविल वाद में अधिकारिता के संबंध में उठाए गए नियमित आक्षेपों से नहीं की जा सकती – धारा 16(2) के अधीन प्रतिरक्षा का लिखित कथन फाइल किए जाने के पूर्व आरंभिक प्रक्रम पर उठाए गए आक्षेप पर विचार किया जा सकता है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि इस अपील के अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी संख्या 1 के साथ एक यान अर्थात् टाटा ट्रक क्रय करने के लिए

भाड़ाक्रय करार किया, जिसके लिए वित्तीय सहायता प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा उपलब्ध कराई गई थी । इस भाड़ाक्रय करार के दो प्रत्याभूतिदाता थे । प्रत्यर्थी संख्या 1 के अनुसार अपीलार्थी देय किस्तों का संदाय कर पाने में विफल रहा जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी को तारीख 26 जून, 2011 को एक सूचना जारी की गई जिसके द्वारा उससे अधिशेष देयों के संदाय की मांग की गई । अपीलार्थी से तारीख 26 जून, 2011 की सूचना जारी करते हुए अधिशेष देयों का संदाय दंडनीय ब्याज सहित सूचना जारी किए जाने की तारीख से सात दिनों के भीतर किए जाने की अपेक्षा की गई, जिसमें विफल रहने पर विवाद एकल मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाना था । जब अपीलार्थी तारीख 26 जून, 2011 की उपरोक्त सूचना का उत्तर दे पाने में विफल रहा, तो प्रत्यर्थी संख्या 1 ने धुबरी बार संघ के अधिवक्ता श्री अनुपम घोष को एकल मध्यस्थ के रूप में नियुक्त कर दिया । मध्यस्थ ने अपीलार्थी और प्रत्यर्थी संख्या 1 और दोनों प्रत्याभूतिदाताओं को तारीख 3 सितम्बर, 2011 की सूचना, जिसके द्वारा उन्होंने माध्यस्थम् कार्यवाही में दावे और खंडन दावे के न्यायनिर्णयन के प्रयोजनार्थ उनके समक्ष उपस्थित होने की तारीख अधिसूचित की, जारी कर दी । अपीलार्थी ने तारीख 3 सितंबर, 2011 की सूचना की प्राप्ति पर एकल मध्यस्थ द्वारा भाड़ाक्रय कारार से उद्भूत होने वाले विवाद का न्यायनिर्णयन किए जाने की अधिकारिता को चुनौती देते हुए आवेदन फाइल किया । तत्पश्चात्, अपीलार्थी ने तारीख 10 दिसंबर, 2011 को अपनी प्रतिरक्षा में लिखित कथन फाइल किया, जिसके द्वारा उसने उस प्रक्रिया, जिसके द्वारा एकल मध्यस्थ नियुक्त किया गया, को प्रश्नगत करते हुए एकल मध्यस्थ की अधिकारिता का अभिवाक् एक बार पुन: उठाया । तथापि, अपीलार्थी द्वारा उठाए गए आक्षेप का अनदेखा करते हुए एकल मध्यस्थ ने तारीख 15 जनवरी, 2012 को पंचाट पारित कर दिया जिसके द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 का 8,63,594/- रुपए और इस रकम पर 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज सहित दावा मंजूर कर लिया गया । अपीलार्थी ने तारीख 15 जनवरी, 2012 के माध्यस्थम् पंचाट से व्यथित होकर 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन आवेदन फाइल करते हुए धुबरी के

विद्वान् जिला न्यायाधीश के न्यायालय की शरण ली और आक्षेपित माध्यस्थम् पंचाट अपास्त किए जाने की प्रार्थना की । धुबरी के विद्वान् जिला न्यायाधीश ने तारीख 6 अगस्त, 2015 के निर्णय और आदेश द्वारा उक्त आवेदन खारिज कर दिया । अत: यह अपील फाइल की गई । यह अपील धुबरी के विद्वान् जिला न्यायाधीश के न्यायालय द्वारा तारीख 6 अगस्त, 2015 को पारित निर्णय और आदेश, जिसके द्वारा वादी द्वारा 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 34 के अधीन अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए आवेदन को अस्वीकृत कर दिया गया और एकल मध्यस्थ श्री अनुपम घोष द्वारा 2011 के माध्यस्थम् मामला संख्या 1 में पारित तारीख 15 जनवरी, 2012 के माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त किए जाने से इनकार कर दिया गया, के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अलुप्रो बिल्डिंग सिस्टम प्राइवेट लिमिटेड बनाम ओजोन ओवरसीज प्राइवेट लिमिटेड वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पक्षों के मध्य धारा 21 के अधीन किसी सूचना की अपेक्षा का अधित्यजन किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी करार की अनुपस्थिति में इस उपबंध को पूर्ण रूप से प्रभावी किया जाना चाहिए । इस विनिश्चय में आगे यह मताभिव्यक्ति की गई है कि माध्यस्थम् खंड का अवलंब लिए जाने के प्रयोजनार्थ धारा 21 के अधीन प्रत्यर्थी द्वारा किसी सूचना के बिना आयोजित माध्यस्थम् कार्यवाही अविधिमान्य है । इस नियम का एक मात्र अपवाद यह होगा कि पक्षों के मध्य इसके विपरीत कोई करार हो । मैं माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किए गए विचारों के साथ इस विवाद्यक पर ससम्मान सहमत हूं । अत: मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूं कि जब तक कि पक्षों के मध्य अन्यथा रूप से सहमति न हो, धारा 21 के अधीन जारी की गई सूचना 1996 के अधिनियम के अर्थान्तर्गत माध्यस्थम् कार्यवाही आरंभ किए जाने के प्रयोजनार्थ अविधिमान्य होगी और इस नियम से किसी भी प्रकार का विचलन का परिणाम माध्यस्थम् कार्यवाही और उस कार्यवाही के अंतर्गत पारित पंचाट का अविधिमान्यकरण

होगा । उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि संविदा करार के पक्षों में से कोई भी पक्ष, जो एकल मध्यस्थ द्वारा न्यायनिर्णयन के लिए विवाद को निर्दिष्ट किए जाने की ईप्सा करता है, को प्रत्यर्थी को न केवल माध्यस्थम् के लिए विवाद को निर्दिष्ट किए जाने वाले विनिश्चय को संसूचित करने के लिए बल्कि मध्यस्थ का नाम प्रस्तावित किए जाने के लिए भी सूचना जारी करनी चाहिए और प्रत्यर्थी को उस सूचना पर सहमत होने के लिए 30 दिनों का समय दिया जाना चाहिए । यदि पक्षों द्वारा या उनके मध्य मध्यस्थ के चुनाव की बाबत इस प्रकार का कोई करार नहीं होता है, तो अन्य पक्ष को उपलब्ध एकमात्र विकल्प यह होगा कि वह 1996 की अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन समुचित फोरम की शरण लेगा । वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अपीलार्थी से श्री अनुपम घोष को एकल मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किए जाने की बाबत सहमत होने की अपेक्षा करते हुए कोई सूचना जारी नहीं की और न ही अपीलार्थी ने प्रत्यर्थियों द्वारा नियुक्त किए गए एकल मध्यस्थ के संबंध में अपनी पसंद की बाबत सहमति संसूचित की । इसलिए, श्री अनुपम घोष की प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा एकल मध्यस्थ के रूप में नियुक्ति 1996 की अधिनियम की धारा 11(2) का स्पष्टत: अतिक्रमण है । यहां पर इस बात का भी उल्लेख किया जाना चाहिए कि अपीलार्थी ने सदैव ही एकल मध्यस्थ की अधिकारिता को चुनौती दी है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा एकल मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए श्री अनुपम घोष की एकपक्षीय रूप से नियुक्ति को विधि की दृष्टि में विधिमान्य अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता । एम. एस. पी. इन्फ्रास्ट्रक्चर वाले मामले, जिसका अवलंब प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा लिया गया, में यह मताभिव्यक्ति की गई है कि प्रतिरक्षा कथन फाइल किए जाने के पश्चात् माध्यस्थम् अधिकरण की अधिकारिता पर आक्षेप करने का अधिकार किसी भी पक्ष को उपलब्ध नहीं होगा । किंतु वर्तमान मामले में अभिलेख से यह स्पष्ट है कि माध्यस्थम् अधिकरण की अधिकारिता की कमी का अभिवाक् अपीलार्थी द्वारा कार्यवाही के आरंभिक बिंदु पर ही और निश्चित रूप से प्रतिरक्षा का लिखित कथन फाइल किए

जाने के पूर्व उठा दिया गया था । इसके अतिरिक्त, मध्यस्थ की अधिकारिता की कमी के संबंध में अपीलार्थी द्वारा उठाया गया आक्षेप न केवल 1996 के अधिनियम के अधिक्षेत्र के भीतर आता है बल्कि यह आक्षेप मामले के आधार को भी प्रभावित करता है । 1996 का अधिनियम एक विशेष विधायन है और इसलिए उक्त अधिनियम के अधीन संचालित किसी भी कार्यवाही का पालन इस अधिनियम में समाविष्ट उपबंधों के अनुसार कड़ाईपूर्वक किया जाना चाहिए । इसलिए, इस मामले में अपीलार्थी द्वारा लिया गया अधिकारिता की कमी के अभिवाक् की तुलना इस न्यायालय की सुविचारित राय में किसी सिविल वाद में अधिकारिता की कमी के नियमित आक्षेप के साथ नहीं की जा सकती । इसके अतिरिक्त माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा लॉयन इंजीनियरिंग कन्सल्टेंट्स बनाम मध्य प्रदेश राज्य वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि चूंकि अधिकारिता की कमी के संबंध में लिया गया अभिवाक् एक विधिक अभिवाक् होता है, अत: इस अभिवाक् को धारा 34 के अधीन पंचाट को चुनौती दिए जाने के प्रक्रम पर भी उठाया जा सकता है । इसलिए, विद्वान् जिला न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करने में विधि की दृष्टि में त्रुटि कारित की कि अपीलार्थी द्वारा उठाए गए अभिवाक् पर पंचाट को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन विचार नहीं किया जा सकता । पूर्वोक्त कारणोंवश, मेरा यह विचार है कि तारीख 15 जनवरी, 2012 का माध्यस्थम् पंचाट विधि की दृष्टि में अकृतता है और तद्नुसार इस के संबंध में घोषणा की जानी चाहिए । परिणामस्वरूप, धुबरी के विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 6 अगस्त, 2015 को पारित आदेश में मध्यक्षेप किया जाना अपेक्षित है । (पैरा 13, 15, 16, 17 और 18)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2018]	(2018) 16 एस. सी. सी. 758 = ए. आई. आर. 2018 एस. सी. 1895 : **लॉयन इंजीनियरिंग कन्सल्टेंट्स** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ;	17

[2015] (2015) 13 एस. सी. सी. 713 = ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 710 : **एम. एस. पी. इन्फ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड** बनाम **एम. पी. रोड डेवलपमेंट कारपोरेशन लिमिटेड** । 8

अवलंबित निर्णय

[2017] 2017 एस. सी. सी. ऑनलाइन दिल्ली 7228 : **अलुप्रो बिल्डिंग सिस्टम प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **ओजोन ओवरसीज प्राइवेट लिमिटेड** । 13

माध्यस्थम् अधिकारिता : 2015 का माध्यस्थम् आवेदन संख्या 22.

1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम की धारा 21 के अधीन आवेदन ।

याची की ओर से श्री एच. गुप्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री मोहम्मद असलम और डी. सेनापति

आदेश

अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री एच. गुप्ता को सुना । प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री डी. सेनापति को भी सुना ।

2. यह अपील 2012 के प्रकीर्ण (माध्यस्थम्) मामला संख्या 1 में धुबरी के विद्वान् जिला न्यायाधीश के न्यायालय द्वारा तारीख 6 अगस्त, 2015 को पारित निर्णय और आदेश, जिसके द्वारा वादी द्वारा 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम (जिसको इसमें इसके पश्चात् 1996 का अधिनियम कहकर निर्दिष्ट किया गया है) की धारा 34 के अधीन अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए आवेदन को अस्वीकृत कर दिया गया और एकल मध्यस्थ अर्थात् श्री अनूपम घोष द्वारा 2011 के माध्यस्थम् मामला संख्या 1 में पारित तारीख 15 जनवरी, 2012 के माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त किए जाने से इनकार कर दिया गया, के विरुद्ध फाइल की गई है ।

3. संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि इस अपील का अपीलार्थी प्रत्यर्थी संख्या 1 के साथ एक यान अर्थात् टाटा ट्रक जिसका रजिस्ट्रीकरण संख्या डब्ल्यू बी 73बी 4778 था, क्रय करने के लिए एक भाड़ाक्रय करार में प्रविष्ट हुआ, जिसके लिए वित्तीय सहायता प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा उपलब्ध कराई गई थी । श्री दिलीप आचार्जी और अशोक कुंडू इस भाड़ाक्रय करार के प्रत्याभूतिदाता थे । प्रत्यर्थी संख्या 1 के अनुसार अपीलार्थी देय किस्तों का संदाय कर पाने में विफल रहा जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी को तारीख 26 जून, 2011 को एक सूचना जारी की गई जिसके द्वारा उससे अधिशेष देयों के संदाय की मांग की गई । अपीलार्थी से तारीख 26 जून, 2011 की सूचना जारी करते हुए अधिशेष देयों का संदाय दांडिक ब्याज सहित सूचना जारी किए जाने की तारीख से सात दिनों के भीतर किए जाने की अपेक्षा की गई थी, जिसमें विफल रहने पर विवाद एकल मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाना था । जब अपीलार्थी तारीख 26 जून, 2011 की उपरोक्त सूचना का उत्तर दे पाने में विफल रहा, तो प्रत्यर्थी संख्या 1 ने धुबरी बार संघ के अधिवक्ता श्री अनुपम घोष को एकल मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त कर दिया । प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा इस प्रकार से नियुक्त किए गए मध्यस्थ ने अपीलार्थी और प्रत्यर्थी संख्या 1 और दोनों प्रत्याभूतिदाताओं को तारीख 3 सितम्बर, 2011 की सूचना जिसके द्वारा उन्होंने माध्यस्थम् कार्यवाही में दावे और खंडन दावे के न्यायनिर्णयन के प्रयोजनार्थ उनके समक्ष उपस्थित होने की तारीख अधिसूचित की, जारी की । अपीलार्थी ने तारीख 3 सितंबर, 2011 की सूचना की प्राप्ति पर एकल मध्यस्थ द्वारा भाड़ाक्रय कारार से उद्भूत होने वाले विवाद का न्यायनिर्णयन किए जाने की अधिकारिता को चुनौती देते हुए एक आवेदन फाइल किया । तत्पश्चात्, अपीलार्थी ने तारीख 10 दिसंबर, 2011 को अपनी प्रतिरक्षा में लिखित कथन फाइल किया, जिसके द्वारा उसने उस प्रक्रिया को प्रश्नगत करते हुए, जिसके द्वारा एकल मध्यस्थ को नियुक्त किया गया था, एकल मध्यस्थ की अधिकारिता का अभिवाक् एक बार पुन: उठाया । तथापि, उस आक्षेप को अनदेखा करते हुए, जिसे अपीलार्थी द्वारा उठाया गया था, एकल मध्यस्थ ने तारीख 15 जनवरी,

2012 को पंचाट पारित कर दिया जिसके द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 का 8,63,594/- रुपए और इस रकम पर 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज सहित दावा मंजूर कर लिया गया ।

4. अपीलार्थी ने तारीख 15 जनवरी, 2012 के माध्यस्थम् पंचाट से व्यथित होकर 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन आवेदन, जिसे 2012 के प्रकीर्ण (माध्यस्थम्) मामला संख्या 1 के रूप में संख्यांकित और रजिस्ट्रीकृत किया गया, फाइल करते हुए धुबरी के विद्वान् जिला न्यायाधीश के न्यायालय की शरण ली और आक्षेपित माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त किए जाने की प्रार्थना की । धुबरी के विद्वान् जिला न्यायाधीश ने तारीख 6 अगस्त, 2015 के निर्णय और आदेश द्वारा उक्त आवेदन खारिज कर दिया । अत: यह अपील फाइल की गई ।

5. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री गुप्ता की प्राथमिक दलील यह है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने मध्यस्थ नियुक्त करने के पूर्व अपीलार्थी को कोई सूचना जारी नहीं की और न ही विधि अनुसार माध्यस्थम् के लिए किसी विवाद को कभी निर्दिष्ट किया । श्री गुप्ता के अनुसार तारीख 26 जून, 2011 की सूचना ही वह सूचना है जिसके द्वारा अधिशेष देयों के संदाय की मांग की गई थी । श्री गुप्ता ने निवेदन किया कि चूंकि कोई भी सूचना, जैसाकि 1996 के अधिनियम की धारा 21 के अधीन अनुध्यात है, अपीलार्थी को जारी नहीं की गई थी और न ही एकल मध्यस्थ की नियुक्ति के मामले में अपीलार्थी की सहमति की ईप्सा की गई थी, अत: विधि की दृष्टि में माध्यस्थम् कार्यवाही अस्तित्वहीन है और आक्षेपित पंचाट अकृतता है ।

6. श्री गुप्ता का यह निवेदन भी है कि यद्यपि आक्षेपित माध्यस्थम् पंचाट की विधिमान्यता को अपीलार्थी द्वारा अधिकारिता का अभिवाक् लेते हुए विनिर्दिष्ट रूप से चुनौती दी गई, फिर भी विद्वान् जिला न्यायाधीश उस पर विधि अनुसार विचार करने में विफल रहे और तदद्वारा उन्होंने धारा 34 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को अस्वीकृत करके यह अभिनिर्धारित करते हुए प्रकटत: अवैधता कारित की

कि यह आधार कोई ऐसा आधार नहीं है जो 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त किए जाने के लिए उपलब्ध हो ।

7. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री सेनापति ने अपीलार्थी के काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों का उत्तर देते हुए निवेदन किया कि इस मामले में अपीलार्थी को कोई सूचना उनके मुवक्किल द्वारा श्री अनुपम घोष को एकल मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किए जाने के पूर्व जारी नहीं की गई थी । तथापि, विद्वान् काउंसेल ने दलील दी कि अपीलार्थी ने एकल मध्यस्थ की अधिकारिता की कमी के संबंध में किसी अभिवाक् का मतावलंबन नहीं लिया है और इसलिए उन्होंने इस आधार पर आक्षेपित माध्यस्थम् पंचाट पर अभ्याक्रमण के अपने अधिकार का अधित्यजन कर दिया है । श्री सेनापति ने यह निवेदन भी किया कि मध्यस्थ की अधिकारिता के कमी के संबंध में अपीलार्थी की आधारी दलील पक्षों के मध्य और उनके द्वारा एक सिविल वाद के लंबन के संदर्भ में थी और इसलिए इसको 1996 की अधिनियम की धारा 8 के अर्थान्तर्गत उठाए गए आक्षेप के रूप में समझा जाना चाहिए और न कि 1996 के अधिनियम की धारा 16(2) के अधीन आक्षेप के रूप में ।

8. श्री सेनापति ने **एम. एस. पी. इन्फ्रास्ट्रक्चर लिमिटेड** बनाम **एम. पी. रोड डेवलपमेंट कारपोरेशन लिमिटेड**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि विधि की स्थिरीकृत स्थिति यह है कि अधिकारिता के संबंध में आक्षेप सिविल वाद के मुकाबले माध्यस्थम् कार्यवाही के मामले में भिन्न होता है और इसलिए 1996 के अधिनियम के उपबंध के अनुसार अपीलार्थी द्वारा कोई अभिवाक् न लिए जाने के कारण उक्त अभिवाक् पर इस न्यायालय द्वारा इस दूरस्थ समयबिंदु पर विचार नहीं किया जा सकता ।

9. मैंने दोनों पक्षों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों पर गंभीरतापूर्वक विचार किया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का

---

[1] (2015) 13 एस. सी. सी. 713 = ए. आई. आर. 2015 एस. सी. 710.

सतर्कतापूर्वक परिशीलन किया ।

10. यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाना चाहिए कि प्रत्यर्थी संख्या 1 (वित्त पोषक) के साथ हस्ताक्षरित भाड़ाक्रय करार को अपीलार्थी द्वारा विवादित नहीं किया गया है और साथ ही माध्यस्थम् करार की विद्यमान्यता से भी उसके द्वारा इनकार नहीं किया गया है । वर्तमान कार्यवाही में उद्भूत विवाद उस प्रक्रिया से संबंधित है जिसका अनुसरण प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा मध्यस्थ नियुक्त किए जाते समय किया गया है ।

11. भाड़ाक्रय करार में समाविष्ट माध्यस्थम् करार के अनुसार धुबरी बार संघ का कोई अधिवक्ता एकल मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए सक्षम होगा, जहां तक पक्षों के मध्य या उनके द्वारा उद्भूत होने वाले किसी विवाद के न्यायनिर्णय का संबंध है । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रत्यर्थी संख्या 1 के विधिक सलाहकार ने अपीलार्थी और दोनों प्रत्याभूतिदाताओं से अधिशेष देयों की संदाय की मांग करते हुए तारीख 26 जून, 2011 की सूचना जारी की थी । तारीख 26 जून, 2011 की सूचना के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि वह कोई ऐसी सूचना नहीं थी जिसके द्वारा माध्यस्थम् के लिए विवाद को निर्दिष्ट किया गया था । तारीख 26 जून, 2011 की सूचना में भी किसी व्यक्ति की एकल मध्यस्थ के रूप में नियुक्ति के बारे में कोई उल्लेख नहीं है । प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा अपीलार्थी को कोई अन्य सूचना जारी नहीं की गई थी । अतः, यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने एकपक्षीय रूप से अपीलार्थी की सहमति अभिप्राप्त किए बिना या उसको सूचित किए बिना एकल मध्यस्थ की नियुक्ति कर दी थी । इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थियों द्वारा 1996 के अधिनियम की धारा 21 के अर्थान्तर्गत कोई सूचना भी माध्यस्थम् कार्यवाही का आरंभ अधिसूचित करते हुए जारी नहीं की गई थी ।

12. 1996 के अधिनियम की धारा 21 उपबंधित करती है कि किसी भी माध्यस्थम् कार्यवाही के आरंभ होने के बारे में उपधारणा उस तारीख को की जाएगी, जिसको उस विवाद को माध्यस्थम् के लिए

निर्दिष्ट किए जाने का अनुरोध प्रत्यर्थी द्वारा प्राप्त किया गया है, जब तक कि पक्षों द्वारा अन्यथा रूप से सहमति व्यक्त न की जाए । इस मामले में पक्षों मे मध्य 1996 के अधिनियम की धारा 21 की आज्ञा के विपरीत पक्षों के मध्य कोई करार नहीं है । इसलिए, माध्यस्थम् करार के अधीन कोई विधिमान्य माध्यस्थम् कार्यवाही केवल तभी आरंभ हो गई कही जा सकती है जब प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा माध्यस्थम् के विवाद को निर्दिष्ट करते हुए कोई सूचना जारी की गई हो और उसको अपीलार्थी द्वारा प्राप्त किया गया हो । तथापि, इस मामले में इस तथ्य के बाबत कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा अपीलार्थी को ऐसी कोई सूचना कभी जारी नहीं की गई ।

13. **अलुप्रो बिल्डिंग सिस्टम प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **ओजोन ओवरसीज प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पक्षों के मध्य धारा 21 के अधीन किसी सूचना की अपेक्षा का अधित्यजन किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी करार की अनुपस्थिति में इस उपबंध को पूर्ण रूप से प्रभावी किया जाना चाहिए । इस विनिश्चय में आगे यह मताभिव्यक्ति की गई है कि माध्यस्थम् खंड का अवलंब लिए जाने के प्रयोजनार्थ धारा 21 के अधीन प्रत्यर्थी द्वारा किसी सूचना के बिना आयोजित की गई माध्यस्थम् कार्यवाही अविधिमान्य है । इस नियम का एक मात्र अपवाद यह होगा कि पक्षों के मध्य इसके विपरीत कोई करार हो । मैं माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा व्यक्त किए गए विचारों के साथ इस विवाद्यक पर ससम्मान सहमत हूं । अत: जो निष्कर्ष निकलता है, वह यह है कि जब तक कि पक्षों के मध्य अन्यथा रूप से सहमति न हो, धारा 21 के अधीन जारी की गई सूचना 1996 के अधिनियम के अर्थान्तर्गत माध्यस्थम् कार्यवाही आरंभ किए जाने के प्रयोजनार्थ अनिवार्य होगी और इस नियम से किसी भी प्रकार का विचलन का परिणाम माध्यस्थम् कार्यवाही और उस माध्यस्थम् कार्यवाही के अंतर्गत पारित किए गए पंचाट का अविधिमान्यकरण होगा ।

---

[1] 2017 एस. सी. सी. ऑनलाइन दिल्ली 7228.

14. यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाना चाहिए कि 1996 के अधिनियम की धारा 11 'मध्यस्थ की नियुक्ति' पर विचार करती है । 1996 के अधिनियम की धारा 11(2) उपबंधित करती है कि पक्षकार मध्यस्थ या मध्यस्थों को नियुक्त करने के लिए किसी भी प्रक्रिया पर करार करने के लिए स्वतंत्र हैं । तथापि, धारा 11 की उपधारा (5) के अनुसार यदि पक्षकार किसी मध्यस्थ पर एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार से किए गए किसी अनुरोध की प्राप्ति से 30 दिन के भीतर इस प्रकार सहमत होने पर असफल रहते हैं, तो नियुक्ति किसी पक्षकार के अनुरोध पर उच्चतम न्यायालय द्वारा या जैसा भी मामला हो, उच्च न्यायालय द्वारा या इस न्यायालय द्वारा पदाभिहित किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा धारा 11 की उपधारा (6) में अभिकथित प्रक्रिया के अनुसार की जाएगी ।

15. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि संविदा करार के पक्षों में से कोई भी पक्ष, जो एकल मध्यस्थ द्वारा न्यायनिर्णयन के लिए विवाद को निर्दिष्ट किए जाने की ईप्सा करता है, को प्रत्यर्थी को न केवल माध्यस्थम् के लिए विवाद को निर्दिष्ट किए जाने वाले विनिश्चय को संसूचित करने के लिए बल्कि मध्यस्थ का नाम प्रस्तावित किए जाने के लिए भी सूचना जारी करनी चाहिए और प्रत्यर्थी को उस सूचना पर सहमत होने के लिए 30 दिनों का समय दिया जाना चाहिए । यदि पक्षों द्वारा या उनके मध्य मध्यस्थ के चुनाव के बाबत इस प्रकार का कोई करार नहीं होता है, तो अन्य पक्ष को उपलब्ध एकमात्र विकल्प यह होगा कि वह 1996 की अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन समुचित फोरम की शरण लेगा ।

16. वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी संख्या 1 ने अपीलार्थी से श्री अनुपम घोष को एकल मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किए जाने के बाबत सहमत होने की अपेक्षा करते हुए कोई सूचना जारी नहीं की और न ही अपीलार्थी ने प्रत्यर्थियों द्वारा नियुक्त किए गए एकल मध्यस्थ के संबंध में अपनी पसंद की बाबत अपनी सहमति संसूचित की । इसलिए, श्री अनुपम घोष की प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा एकल मध्यस्थ के रूप में

नियुक्ति 1996 की अधिनियम की धारा 11(2) का स्पष्टत: अतिक्रमण है । यहां पर इस बात का भी उल्लेख किया जाना चाहिए कि अपीलार्थी ने सदैव ही एकल मध्यस्थ की अधिकारिता को चुनौती दी है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा एकल मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए श्री अनुपम घोष की एकपक्षीय रूप से नियुक्ति को विधि की दृष्टि में विधिमान्य अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता ।

17. **एम. एस. पी. इन्फ्रास्ट्रक्चर** (उपरोक्त) वाले मामले, जिसका अवलंब प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा लिया गया, में यह मताभिव्यक्ति की गई है कि प्रतिरक्षा कथन फाइल किए जाने के पश्चात् माध्यस्थम् अधिकरण की अधिकारिता पर आक्षेप करने का अधिकार किसी भी पक्ष को उपलब्ध नहीं होगा । किंतु वर्तमान मामले में अभिलेख से यह स्पष्ट है कि माध्यस्थम् अधिकरण की अधिकारिता की कमी का अभिवाक् अपीलार्थी द्वारा कार्यवाही के आरंभिक बिंदु पर ही और निश्चित रूप से प्रतिरक्षा का लिखित कथन फाइल किए जाने के पूर्व उठा दिया गया था । इसके अतिरिक्त, मध्यस्थ की अधिकारिता की कमी के संबंध में अपीलार्थी द्वारा उठाया गया आक्षेप न केवल 1996 के अधिनियम के अधिक्षेत्र के भीतर आता है बल्कि यह आक्षेप मामले के आधार को भी प्रभावित करता है । 1996 का अधिनियम एक विशेष विधायन है और इसलिए उक्त अधिनियम के अधीन संचालित किसी भी कार्यवाही का पालन इस अधिनियम में समाविष्ट उपबंधों के अनुसार कड़ाईपूर्वक किया जाना चाहिए । इसलिए, इस मामले में अपीलार्थी द्वारा लिया गया अधिकारिता की कमी के अभिवाक् की तुलना इस न्यायालय की सुविचारित राय में किसी सिविल वाद में अधिकारिता की कमी के नियमित आक्षेप से नहीं की जा सकती । इसके अतिरिक्त माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **लॉयन इंजीनियरिंग कन्सल्टेंट्स** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि चूंकि अधिकारिता की कमी के संबंध में लिया गया

[1] (2018) 16 एस. सी. सी. 758 = ए. आई. आर. 2018 एस. सी. 1895.

अभिवाक् एक विधिक अभिवाक् है, अत: इस अभिवाक् को धारा 34 के अधीन पंचाट को चुनौती दिए जाने के प्रक्रम पर भी उठाया जा सकता है । इसलिए, विद्वान् जिला न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करने में विधि की दृष्टि में त्रुटि कारित की है कि अपीलार्थी द्वारा उठाए गए अभिवाक् पर पंचाट को अपास्त किए जाने के प्रयोजनार्थ 1996 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन विचार नहीं किया जा सकता ।

18. पूर्वोक्त कारणोंवश, मेरा यह विचार है कि तारीख 15 जनवरी, 2012 का माध्यस्थम् पंचाट विधि की दृष्टि में अकृतता है और तद्नुसार इसके संबंध में घोषणा की जानी चाहिए । परिणामस्वरूप, धुबरी के विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 6 अगस्त, 2015 को पारित आदेश में मध्यक्षेप किया जाना अपेक्षित है ।

19. अत: यह स्पष्ट किया जाता है कि चूंकि तारीख 15 जनवरी, 2012 के माध्यस्थम् पंचाट में गुणागुण के आधार पर मध्यक्षेप नहीं किया गया है बल्कि तकनीकी आधार पर मध्यक्षेप किया गया है । अत: प्रत्यर्थी संख्या 1 को इस बात की स्वतंत्रता होगी कि वह विधि अनुसार अपने देयों की वसूली के लिए नई कार्यवाही आरंभ करे, यदि उसको इस बाबत सलाह दी जाती है ।

20. अपील ऊपर निर्दिष्ट सीमा तक मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

शु.

(2020) 1 सि. नि. प. 658 गुवाहाटी

नाहीद परबीन निशात (श्रीमती)

बनाम

असम राज्य और अन्य

[2016 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 6942]

तारीख 2 अगस्त, 2019

न्यायमूर्ति कल्याण राय सुराना

असम मुस्लिम विवाह और विवाह-विच्छेद रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1935 (1935 का 9) – धारा 4 और 9 – पति द्वारा एहसन तलाक प्रथा के अंतर्गत विवाह और विवाह-विच्छेद रजिस्ट्रार को प्रथम तलाक की इत्तिला दिया जाना – रजिस्ट्रार द्वारा अपनी मुहर के अधीन प्रथम तलाक की इत्तिला को पुलिस थाना के माध्यम से पत्नी पर तामील कराया जाना – पत्नी द्वारा प्रथम तलाक की इत्तिला को चुनौती दिया जाना – अधिनियम की धारा 9 रजिस्ट्रार को विवाह-विच्छेद के पक्षों को तलाक प्रमाणपत्र जारी किए जाने के लिए सशक्त नहीं करती – रजिस्ट्रार द्वारा प्रथम तलाक का आदेश जारी किया जाना आरंभ से ही अकृत और बिना अधिकारातीत है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह है कि याची का विवाह प्रत्यर्थी संख्या 4 के साथ तारीख 10 दिसंबर, 1996 को हुआ था । याची द्वारा यह दर्शित किया गया है कि तारीख 20 जुलाई, 2016 को प्रत्यर्थी संख्या 3 ने दूरभाष द्वारा संपर्क करके याची को अपने कार्यालय में तारीख 30 जुलाई, 2016 को उपस्थित होने के लिए कहा और जब याची प्रत्यर्थी संख्या 3 के कार्यालय में उपस्थित हुई, तो उस पर प्रत्यर्थी संख्या 3 के समक्ष प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रार्थना-पत्र, जिसके द्वारा याची और प्रत्यर्थी संख्या 4 के मध्य वैवाहिक विवाद का शांतिपूर्ण निपटारा कराए जाने के लिए प्रार्थना की गई थी, की नकल तामील की गई । तद्नुसार, याची ने अपना लिखित कथन प्रस्तुत किया । याची को

तारीख 17 सितंबर, 2016 को पुन: प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा अपने कार्यालय में तलब किया गया और उपस्थित होने पर प्रत्यर्थी संख्या 3 ने उसके समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि यदि वह प्रत्यर्थी संख्या 4 से विवाह-विच्छेद ले लेती है, तो उसको एक बड़ी रकम का संदाय किया जाएगा । याची ने इस प्रस्ताव से इनकार कर दिया । तत्पश्चात्, तारीख 13 अक्तूबर, 2016 को पुलिस थाना पनबाजार के पुलिसकर्मी ने याची पर एक तलाकनामा की तामीली की, जिसे प्रत्यर्थी संख्या 3 की मुहर के अधीन भेजा गया था और जिसके द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 ने याची के विरुद्ध प्रथम तलाक की घोषणा की थी । तद्नुसार, याची ने यह प्रार्थना करते हुए इस न्यायालय की शरण ली कि प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 को उक्त प्रथम तलाक की घोषणा वाले आदेश को वापस लेने के लिए निर्देशित किया जाए अन्यथा एहसन तलाक के आक्षेपित रजिस्ट्रीकरण के प्रभाव और तारीख 22 सितंबर, 2016 के प्रथम तलाक को समाप्त किया जाए और प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा संचालित की गई संपूर्ण प्रक्रिया को अकृत और अमान्य घोषित किया जाए । याची ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन यह रिट याचिका गुवहाटी के मुस्लिम विवाह और विवाह-विच्छेद रजिस्ट्रार और सदर काज़ी द्वारा याची के विरुद्ध एहसन तलाक का आदेश पारित किए जाने और उसको रजिस्ट्रीकृत किए जाने वाले आक्षेपित आदेश को चुनौती देते हुए फाइल की है । याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – मेरिजा खातून वाले मामले का विनिश्चयानुपात हमारे समक्ष उपस्थित वर्तमान मामले के तथ्यों पर प्रत्यक्षत: लागू होता है । अत:, मेरिजा खातून वाले मामले में अधिकथित विनिश्चयानुपात को दृष्टि में रखते हुए यह रिट याचिका मंजूर की जाती है । परिणामत:, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि तारीख 22 सितंबर, 2016 की लिखत द्वारा प्रथम तलाक का जारी किया जाना, जो प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा तारीख 13 अक्तूबर, 2016 को पनबाजार पुलिस थाना के माध्यम से तामील कराया गया, आरंभ से ही अकृत, विधि के किसी प्राधिकार के बिना और बिना अधिकारिता के है । प्रत्यर्थी संख्या 3 को उसके कर्तव्य

के प्रति पुन: स्मरण कराया जाता है कि वे इस न्यायालय द्वारा मेरिजा खातून वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 27 में समाविष्ट निर्देशों का यथाशीघ्र अनुपालन करेंगे । याची को यह स्वतंत्रता होगी कि वह प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा दिए गए प्रथम तलाक को विधि अनुसार चुनौती दे । (पैरा 5 और 6)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2018] 2018 (4) जी. एल. टी. 380 :
मेरिजा खातून बनाम **असम राज्य** । 4

रिट (अपीली) अधिकारिता : 2016 की रिट याचिका (सिविल) संख्या 6942.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्रीमती एस. पी. हुसैन

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री एस. डेकर

आदेश

याची की विद्वान् काउंसेल श्रीमती एस. पी. हुसैन को सुना । प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान् सरकारी अधिवक्ता सुश्री एम. डी. बोरा, प्रत्यर्थी संख्या 3 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री ए. आई. उद्दीन, प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री ए. गांगुली और प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री टी. एच. हजारिका को भी सुना ।

2. याची ने संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन फाइल की गई इस रिट याचिका द्वारा गुवाहाटी के मुस्लिम विवाह और विवाह-विच्छेद रजिस्ट्रार और सदर काज़ी (प्रत्यर्थी संख्या 3) द्वारा याची के पक्ष में एहसन तलाक का आदेश पारित किए जाने और उसको रजिस्ट्रीकृत किए जाने वाले आक्षेपित आदेश को चुनौती देते हुए फाइल की गई है ।

3. याची द्वारा प्रस्तुत किया गया मामला यह है कि उसका विवाह

प्रत्यर्थी संख्या 4 के साथ तारीख 10 दिसंबर, 1996 को संपन्न हुआ था । उसके द्वारा यह दर्शित किया गया है कि याची से तारीख 20 जुलाई, 2016 को प्रत्यर्थी संख्या 3 ने दूरभाष द्वारा संपर्क किया और अपने कार्यालय में तारीख 30 जुलाई, 2016 को उपस्थित होने के लिए कहा और जब वह प्रत्यर्थी संख्या 3 के कार्यालय में उपस्थित हुई, तो उस पर प्रत्यर्थी संख्या 3 के समक्ष प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा प्रस्तुत की गई प्रार्थना, जिसके द्वारा याची और प्रत्यर्थी संख्या 4 के मध्य वैवाहिक विवाद के शांतिपूर्ण निपटारा कराए जाने के लिए प्रार्थना की गई थी, की नकल तामील की गई । तद्नुसार, याची ने अपना लिखित कथन प्रस्तुत किया । याची को तारीख 17 सितंबर, 2016 को पुन: प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा अपने कार्यालय में तलब किया गया और उपस्थित होने पर प्रत्यर्थी संख्या 3 ने उसके समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि यदि वह प्रत्यर्थी संख्या 4 से विवाह-विच्छेद ले लेती है, तो उसको एक बड़ी रकम का संदाय किया जाएगा । याची ने इस प्रस्ताव से इनकार कर दिया । तत्पश्चात्, तारीख 13 अक्तूबर, 2016 को पुलिस थाना पनबाजार के पुलिसकर्मी ने याची पर एक तलाकनामा की तामीली की, जिसे प्रत्यर्थी संख्या 3 की मुहर के अधीन भेजा गया था और जिसके द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 ने याची के विरुद्ध अपने प्रथम तलाक की घोषणा की थी । तद्नुसार, याची ने यह प्रार्थना करते हुए इस न्यायालय की शरण ली कि प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 को उक्त प्रथम तलाक की घोषणा वाले आदेश को वापस लेने के लिए निर्देशित किया जाए अन्यथा एहसन तलाक के आक्षेपित रजिस्ट्रीकरण के प्रभाव और तारीख 22 सितंबर, 2016 के प्रथम तलाक को समाप्त किया जाए और प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा संचालित की गई संपूर्ण प्रक्रिया को अकृत और अमान्य घोषित किया जाए ।

4. प्रत्यर्थी संख्या 2 से 5 की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेलों ने एहसन तलाक और प्रथम तलाक के विभिन्न पहलुओं पर अपने-अपने निवेदन प्रस्तुत किए हैं । उनके द्वारा जिन बिंदुओं पर दलीलें दी गईं, का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया जाना अपेक्षित नहीं है क्योंकि याची द्वारा उठाया गया विवाद्यक इस न्यायालय द्वारा **मेरिजा खातून** बनाम

असम राज्य[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय द्वारा प्रत्यक्षत: आच्छादित है, जिसका दृढ़तापूर्वक अवलंब याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा लिया गया । इस विनिश्चय के सुसंगत पैरा 11 से 15, 20, 21, 27 और 28 हैं, जिन्हें यहां नीचे उद्धृत किया गया है :-

> "11. श्री बोरपात्रागोहेन ने शायराबानो **बनाम** भारत संघ [(2017) 9 एस. सी. सी. 1 = ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 4609] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को उद्धृत किया । विद्वान् महाधिवक्ता ने सुस्पष्ट रूप से निवेदन किया कि प्रत्यर्थी संख्या 3 सूचना जारी किए जाने में मनमानेपन और बिना विधि के प्राधिकार के कार्य कर रहा था । उन्होंने न्यायालय का ध्यान प्रत्यर्थी संख्या 3 के शपथ-पत्र के पैरा 7 की ओर आकर्षित करते हुए निवेदन किया कि उनको ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी संख्या 3, प्रत्यर्थी संख्या 4 का पक्ष ले रहा था और उसने याची के विरुद्ध पक्षपातपूर्ण कार्रवाई की । उन्होंने निवेदन किया कि यह न्यायालय प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा दिए गए तलाक की विधिमान्यता के प्रश्न पर विचार कर सकती है ।
>
> 12. मैंने पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया ।
>
> 13. काजी अधिनियम के अंतर्गत यह उपबंधित किया गया है कि राज्य को जब यह प्रतीत होता है कि जब किसी स्थानीय क्षेत्र के बड़ी संख्या में मुस्लिम निवासी यह चाहते हैं कि स्थानीय क्षेत्र के लिए एक या एक से अधिक काज़ियों की नियुक्ति की जानी चाहिए, तो राज्य सरकार, यदि ऐसा करना आवश्यक समझती है, उस स्थानीय क्षेत्र के प्रमुख मुस्लिम निवासियों से विचार-विमर्श के पश्चात् किसी एक या अधिक उचित व्यक्ति का चयन कर सकती है और उसको या उनको काज़ी के रूप में नियुक्त कर सकती है ।
>
> 14. काज़ी अधिनियम के लघु शीर्षक से यह प्रतीत होता है कि यह अधिनियम प्रथम दृष्टि में केवल **फोर्ट सेंट जॉर्ज इन**

---

[1] 2018 (4) जी. एल. टी. 380.

काउंसिल के गर्वनर द्वारा प्रशासित राज्य क्षेत्रों में लागू किया गया था । इस अधिनियम में किए गए संशोधन को दृष्टि में रखते हुए यह भी उपबंधित किया गया है कि किसी अन्य राज्य की सरकार भी समय-समय पर शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम को अपने प्रशासन के अंतर्गत आने वाले संपूर्ण राज्य क्षेत्रों या उसके किसी भाग में विस्तारित कर सकती है । 1980 के अधिनियम की धारा 4 से यह दर्शित होता है कि काज़ी अधिनियम के अंतर्गत की गई कोई भी नियुक्ति किसी काज़ी को कोई न्यायिक या प्रशासनिक शक्ति प्रदान करने वाली नहीं प्रतीत की जाएगी ।

15. इस न्यायालय के संज्ञान में यह लाया गया है कि क्या असम राज्य ने काज़ी अधिनियम के प्रयोग को असम राज्य में विस्तारित कर दिया है ।

20. 1935 के अधिनियम के उपबंध और 1935 के नियम विवाह और विवाह-विच्छेद रजिस्ट्रार को विवाह या विवाह-विच्छेद के किसी भी पक्ष को उसके समक्ष उपस्थित होने की अपेक्षा करते हुए सूचना जारी करने के लिए सशक्त नहीं करते । जब उनको सूचना जारी करने का कोई प्राधिकार ही नहीं है तो प्रत्यर्थी संख्या 3 ने याची को उसके समक्ष उपस्थित होने के लिए सूचना जारी करके विधि के किसी भी प्राधिकार के बिना और अधिकारिता के परे जाकर कार्य किया । जो सबसे अधिक निकृष्ट कार्य हुआ, वह यह है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने चांदमारी पुलिस थाना के माध्यम से सूचना जारी की थी । यह बात समझ में नहीं आती कि चांदमारी पुलिस थाना कैसे मुस्लिम विवाह विवाह-विच्छेद रजिस्ट्रार द्वारा जारी की गई सूचनाओं को निष्पादित कर सकता था । प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा किया गया यह अभिवाक् कि उसने प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा संपर्क स्थापित किए जाने पर सुलह का प्रयास किया था, स्वीकार नहीं किया जा सकता । वह व्यक्तिगत हैसियत में पति और पत्नी के मध्य सुलह कराने का प्रयास किए जाने के प्रयोजनार्थ स्वेच्छयापूर्वक अपनी सेवाएं देने का प्रस्ताव देने के लिए स्वतंत्र है किंतु मुस्लिम विवाह और विवाह-विच्छेद के रजिस्ट्रार की

शासकीय हैसियत में नहीं । इस प्रकार का कोई भी प्रयास शक्ति का छद्म प्रयोग होगा ।

21. 1935 के अधिनियम के उपबंध और 1935 के नियम मुस्लिम विवाह और विवाह-विच्छेद के रजिस्ट्रार को विवाह-विच्छेद का प्रमाणपत्र भी जारी करने के लिए सशक्त नहीं करते । विवाह और मुस्लिम विवाह-विच्छेद रजिस्ट्रार का मात्र यह कर्तव्य है कि वह किसी विवाह या विवाह-विच्छेद के रजिस्ट्रीकरण के लिए किसी भी आवेदक को उपयुक्त रजिस्टर में उसके द्वारा की गई प्रविष्टि की प्रमाणित प्रति प्रदान करे । विवाह-विच्छेद प्रमाणपत्र का जारी किया जाना बिल्कुल भी परिकल्पित नहीं है और विवाह-विच्छेद प्रमाणपत्र जारी किए जाने का प्रत्यर्थी संख्या 3 का कार्य 1935 के अधिनियम और 1935 के नियम के उपबंधों का दुरुपयोग है ।

27. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए रिट याचिका यह घोषणा करते हुए निस्तारित की जाती है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा याची को जारी की गई सूचना, और वह भी पुलिस थाना के माध्यम से, विधि के किसी प्राधिकार के बिना है और अधिकारातीत है । प्रत्यर्थी संख्या 3 को निर्देशित किया जाता है कि वह विवाह के किसी भी पक्ष से उसके समक्ष उपस्थित होने की अपेक्षा करते हुए कोई भी सूचना जारी न करे । प्रत्यर्थी संख्या 3 को आगे निर्देशित किया जाता है कि वह मुस्लिम विवाह और विवाह-विच्छेद के रजिस्ट्रार की अपनी हैसियत का प्रयोग करते हुए किसी सुलह कार्यवाही में अंतर्वलित न हो । प्रत्यर्थी संख्या 3 को आगे निर्देशित किया जाता है कि वह विवाह-विच्छेद के रजिस्टर में उसके द्वारा की गई प्रविष्टि का केवल उद्धरण जारी करे और न कि विवाह-विच्छेद प्रमाणपत्र जारी करे, जैसाकि उसने वर्तमान मामले में जारी किया है ।

28. याची को प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा दिए गए तलाक को विधि अनुसार चुनौती देने की स्वतंत्रता होगी ।"

5. **मेरिजा खातून** (उपरोक्त) वाले मामले का विनिश्चयानुपात हमारे

समक्ष उपस्थित वर्तमान मामले के तथ्यों पर प्रत्यक्षत: लागू होता है । अत:, **मेरिजा खातून** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित विनिश्चयानुपात को दृष्टि में रखते हुए यह रिट याचिका मंजूर की जाती है । परिणामत:, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि तारीख 22 सितंबर, 2016 की लिखत द्वारा प्रथम तलाक का जारी किया जाना, जो प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा तारीख 13 अक्तूबर, 2016 को पनबाजार पुलिस थाना के माध्यम से तामील कराया गया, आरंभ से ही अकृत है, बिना विधि के किसी प्राधिकार और बिना अधिकारिता के है । प्रत्यर्थी संख्या 3 को उसके कर्तव्य के प्रति पुन: स्मरण कराया जाता है कि वह यथाशीघ्र इस न्यायालय द्वारा **मेरिजा खातून** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 27 में समाविष्ट निर्देशों का अनुपालन करेंगे ।

6. याची को यह स्वतंत्रता होगी कि वह प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा दिए गए प्रथम तलाक को विधि के अनुसार चुनौती दे ।

7. यह रिट याचिका इस सीमा तक मंजूर की जाती है, जैसाकि ऊपर उपदर्शित किया गया है । पक्ष अपनी-अपनी लागत स्वयं वहन करेंगे ।

8. यह न्यायालय अभिलेख को वापस भेजने के पूर्व विद्वान् सरकारी अधिवक्ता से यह अनुरोध करने के लिए आनत है कि विद्वान् सरकारी अधिवक्ता इस न्यायालय द्वारा **मेरिजा खातून** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय की एक प्रति और साथ ही इस आदेश की एक प्रति असम के पुलिस महानिदेशक को संसूचित करेंगे ताकि वे इस निर्णय के पैरा 20 और 27 का अवलंब ले सकें और अपने कार्यालय को सभी पुलिस थाने को यह सलाह जारी करने के लिए निर्देशित कर सकें कि कोई भी पुलिस थाना मुस्लिम विवाह और विवाह-विच्छेद के रजिस्ट्रार और सदर काज़ी द्वारा जारी तलाक की सूचना तामील न करे ।

याचिका मंजूर की गई ।

शु.

जे. बी. कंस्ट्रक्शन कंपनी, छत्तीसगढ़

बनाम

दक्षिण पूर्व केंद्रीय रेलवे

(2016 का माध्यस्थम् आवेदन संख्या 75)

तारीख 12 फरवरी, 2020

न्यायमूर्ति पी. सैम कौशी

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) – धारा 15, धारा 2(1)(ङ) और 11 – माध्यस्थम् की आज्ञा की समाप्ति के लिए आवेदन आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय के समक्ष फाइल किया जा सकता है और उन उच्च न्यायालयों के समक्ष भी फाइल किया जा सकता है जिनको मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता प्राप्त है – छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय को आरंभिक सिविल न्यायालय की अधिकारिता प्राप्त नहीं है, इसलिए यह उच्च न्यायालय ऐसे आवेदन पर विचार नहीं कर सकता – पक्षों को माध्यस्थम् की आज्ञा की समाप्ति के अनुतोष के लिए आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय की शरण में जाना चाहिए ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह है कि आवेदक, जो कि ठेकेदार है, को छिंदवाड़ा और केलोड के मध्य शेड और डिपो में स्टोन ब्लास्ट पीसने वाली स्टैकिंग मशीन की आपूर्ति और भंडारण के लिए संविदा प्रदान की गई थी । इस संविदा के आधार पर आवेदक और प्रत्यर्थियों के मध्य तारीख 29 अक्तूबर, 2010 को एक करार निष्पादित किया गया । इस संविदा का मूल्य 5,09,87,35,950 रुपए था और इस संविदा की अवधि वर्षा के मौसम को सम्मिलित करते हुए 18 माह थी । संविदा के निष्पादन के अनुक्रम के दौरान पक्षों के मध्य कुछ विवाद उत्पन्न हो गए । पक्षों की तरफ से यह कहा गया कि आवेदक ने आरंभिकत: भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 53 का अवलंब लेते

हुए संविदा को समाप्त कर दिया और प्रत्यर्थियों से अनुरोध किया कि वे उसके द्वारा जमा की गई प्रतिभूति-जमा और बैंक प्रत्याभूतियों को निर्मुक्त कर दें और साथ ही उसके द्वारा की गई आपूर्ति के लिए, जो उसने प्रत्यर्थियों को पहले ही कर दिया था संदाय किए जाने का भी अनुरोध किया, तत्पश्चात्, यह कहा गया कि प्रत्यर्थियों ने तारीख 19 नवंबर, 2013 को कार्य की समाप्ति के लिए सात दिनों की सूचना और तारीख 5 दिसंबर, 2013 को पुन: 48 घंटों की सूचना जारी की और अंतत: 11 दिसंबर, 2013 को संविदा को समाप्त कर दिया और आवेदक द्वारा जमा की गई प्रतिभूति जमा और कार्य निर्वहन की प्रत्याभूति का समपहरण कर लिया । तत्पश्चात्, प्रत्यर्थियों के प्रबंधतंत्र, जो दक्षिण पूर्व केन्द्रीय रेलवे है, ने तारीख 28 मार्च, 2014 को माध्यस्थम् अधिकरण का गठन किया और माध्यस्थम् कार्यवाही आरंभ हो गईं । आवेदक ने तारीख 20 अप्रैल, 2014 को अपना दावा-कथन प्रस्तुत किया । तत्पश्चात् किन्हीं कारणोंवश माध्यस्थम् कार्यवाही में प्रभावी रूप से सुनवाई आयोजित नहीं कराई जा सकीं और मामला स्थगित होता रहा । इस दौरान अनेक पीठासीन मध्यस्थ या माध्यस्थम् अधिकरण के सदस्य या तो सेवानिवृत्त हो गए या स्थानांतरित कर दिए गए और तत्पश्चात् उनके स्थान पर नए पीठासीन मध्यस्थ और माध्यस्थम् अधिकरण के सदस्य नियुक्त किए जाते रहे । चूंकि माध्यस्थम् कार्यवाही प्रभावी रूप से चलाए जाने और समाप्ति में अत्यधिक विलंब हो चुका था, इसलिए आवेदक ने 1996 के अधिनियम की धारा 14 और 15 सपठित धारा 11(6) के अधीन वर्तमान माध्यस्थम् आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति के प्रयोजनार्थ फाइल किया । वर्तमान माध्यस्थम् आवेदन 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम (संक्षेप में 1996 का अधिनियम) की धाराओं 14 और 15 सपठित धारा 11(6) के अधीन फाइल किया गया है । आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय की पूर्वोक्त परिभाषा को सरल शब्दों में पढ़े जाने से यह स्पष्टत: दर्शित होता है कि समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों

को दृष्टि में रखते हुए, 1996 के अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाहियों के प्रयोजनार्थ शब्द 'न्यायालय' से आशय किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय से है । निश्चित रूप से इस परिभाषा में कतिपय मामलों में उच्च न्यायालय भी सम्मिलित हैं । उच्च न्यायालय, जिन्हें न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करने की शक्ति प्राप्त है, जैसाकि 1996 के अधिनियम के अंतर्गत परिभाषित है, के अंतर्गत वे सभी उच्च न्यायालय होंगे जो पक्षों के मध्य विवाद निर्णीत करने के लिए मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करते हैं । 'आरंभिक सिविल अधिकारिता रखने वाले उच्च न्यायालयों' की उक्त परिभाषा में प्रयुक्त अभिव्यक्ति में स्पष्टत: उन समस्त उच्च न्यायालयों को विवर्जित किया गया है, जिनको आरंभिक सिविल अधिकारिता प्राप्त नहीं होती । जहां तक छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय का संबंध है, इस उच्च न्यायालय को 2000 के मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम की धारा 21 के अधीन स्थापित किया गया है । स्वीकृतत:, छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय को 'आरंभिक सिविल न्यायालय' की अधिकारिता प्राप्त नहीं है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इस न्यायालय को मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता प्राप्त नहीं है, यह न्यायालय स्वयमेव ही न्यायालय की उस परिभाषा से विवर्जित हो जाता है, जैसाकि 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ङ) के अधीन परिभाषित है । जहां तक उन निर्णयों का संबंध है जिनका अवलंब आवेदक द्वारा लिया गया वे निर्णय हैं जिनको बाम्बे और दिल्ली उच्च न्यायालयों द्वारा पारित किया गया है और दोनों ही उच्च न्यायालयों ने माध्यस्थम् की विषय-वस्तु सृजित करने वाले प्रश्नों, यदि वे वाद की विषय-वस्तु हैं को निर्णीत करने के लिए मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करते हैं इसलिए उपरोक्त दोनों उच्च न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों का अवलंब नहीं लिया जा सकता या वे निर्णय लागू नहीं होंगे जहां तक छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय का संबंध है, चूंकि इस उच्च न्यायालय को मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता प्राप्त नहीं है, अत: पूर्वोक्त निर्णय, जिनका अवलंब आवेदक द्वारा लिया गया, इन्हीं तथ्यों

पर विभेद्य हैं । उपरोक्त पैराग्राफों में उल्लिखित पूर्वोक्त कारणों को दृष्टि में रखते हुए वर्तमान आवेदन अस्वीकार किए जाने योग्य है और तद्नुसार अस्वीकृत किया जाता है और साथ ही आवेदक के लिए इस अधिकार और अवसर को आरक्षित किया जाता है कि वह माध्यस्थम् की आज्ञा की समाप्ति के अनुतोष के लिए मूल अधिकारिता वाले संबद्ध प्रधान सिविल न्यायालय की शरण में जाए और तत्पश्चात् नए मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए 1996 की अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन इस उच्च न्यायालय की शरण ले । (पैरा 12, 13, 14, 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2020]	2020 एस. सी. सी. ऑनलाईन दिल्ली 350 : **प्रोडैटर केबल टी. बी. डिजी सर्विसेस** बनाम **सीटी केबल नेटवर्क लिमिटेड** ;	9
[2019]	2019 एस. सी. सी. ऑनलाईन बाम्बे 5349 : **आई. टी. डी. सिमेंटेशन इंडिया लिमिटेड** बनाम **कोंकण रेलवे कारपोरेशन लिमिटेड** ;	9
[2017]	2017 एस. सी. सी. ऑनलाईन दिल्ली 12737 : **एरोकम्फर्ट अनुष्का जे. वी.** बनाम **उत्तर रेलवे और एक अन्य** ;	9
[2017]	2017 ए. आई. आर. सी. सी. 1142 (सी. एच. एच.) : **राहुल सोमानी और अन्य** बनाम **रामगोपाल सोमानी और अन्य** ;	17
[2014]	(2014) 7 एस. सी. सी. 255 = ए. आई. आर. 2014 एस. सी. (सप्ली.) 1705 = 2014 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1 = 2014 (3) ए. आई. आर. बाम्बे आर. 208 : **ललित कुमार** बनाम **सांध्वी (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि नीता ललित कुमार सांध्वी और एक अन्य** ;	15

[2007] (2007) 8 स्केल 671 = ए. आई. आर. ऑनलाईन 2007 एस. सी. 57 :
आई. एन. सी. और एक अन्य बनाम
ऐस्सार स्टील्स लिमिटेड । 16

आरंभिक माध्यस्थम् अधिकारिता : 2016 का माध्यस्थम् आवेदन संख्या 75.

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 11 के अधीन आवेदन ।

याची की ओर से सुश्री सौम्या शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री एच. एस. अहलुवालिया

आदेश

वर्तमान माध्यस्थम् आवेदन 1996 के माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम (संक्षेप में 1996 का अधिनियम) की धाराओं 14 और 15 सपठित धारा 11(6) के अधीन फाइल किया गया है ।

2. आवेदक, जो सामान्य रूप से ठेकेदार है, को छिंदवाड़ा और केलोड के मध्य शेड और डिपो में स्टोन ब्लास्ट पीसने वाली स्टैकिंग मशीन की आपूर्ति और भंडारण के लिए संविदा प्रदान की गई थी । इस संविदा के आधार पर आवेदक और प्रत्यर्थियों के मध्य तारीख 29 अक्तूबर, 2010 को करार निष्पादित किया गया था । इस संविदा का मूल्य 5,09,87,35,9502/- रुपए था और संविदा की अवधि वर्षा के मौसम को सम्मिलित करते हुए 18 माह थी ।

3. संविदा के निष्पादन के अनुक्रम के दौरान पक्षों के मध्य कुछ विवाद उत्पन्न हो गए । पक्षों की तरफ से यह कहा गया है कि आवेदक ने आरंभिकत: भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 53 का अवलंब लेते हुए संविदा को समाप्त कर दिया और प्रत्यर्थियों से यह अनुरोध किया कि वे उसके द्वारा जमा की गई प्रतिभूति जमा और बैंक प्रत्याभूतियों को निर्मुक्त कर दें और साथ ही उस आपूर्ति के बाबत संदाय को भी

निर्मुक्त किए जाने का अनुरोध किया, जो उसने प्रत्यर्थियों को पहले ही कर दी थी । तत्पश्चात्, यह कहा गया कि प्रत्यर्थियों ने तारीख 19 नवंबर, 2013 को कार्य की समाप्ति के लिए सात दिनों की एक सूचना और तारीख 5 दिसंबर, 2013 को पुन: 48 घंटों की सूचना जारी की और अंतत: 11 दिसंबर, 2013 को संविदा को समाप्त कर दिया और आवेदक द्वारा जमा की गई प्रतिभूति जमा और कार्य निर्वहन की प्रत्याभूति का समपहरण कर लिया ।

4. तत्पश्चात्, प्रत्यर्थियों के प्रबंधतंत्र जो दक्षिण पूर्व केन्द्रीय रेलवे है, ने तारीख 28 मार्च, 2014 को माध्यस्थम् अधिकरण का गठन किया और माध्यस्थम् कार्यवाही आरंभ हो गईं । आवेदक ने तारीख 20 अप्रैल, 2014 को अपना दावा कथन प्रस्तुत किया । तत्पश्चात् किन्हीं कारणोंवश माध्यस्थम् कार्यवाही में प्रभावी रूप से सुनवाई आयोजित नहीं कराई जा सकी और मामला स्थगित होता रहा । इस दौरान अनेक पीठासीन मध्यस्थ या माध्यस्थम् अधिकरण के सदस्य या तो सेवानिवृत्त हो गए या स्थानांतरित कर दिए गए और इसके पश्चात् उनके स्थान पर नए पीठासीन मध्यस्थ और माध्यस्थम् अधिकरण के सदस्य नियुक्त किए जाते रहे । चूंकि माध्यस्थम् कार्रवाई के प्रभावी रूप से अग्रसरण और समाप्ति में अत्यधिक विलंब हो चुका था, इसलिए आवेदक ने 1996 के अधिनियम की धारा 14 और 15 सपठित धारा 11(6) के अधीन वर्तमान आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति के प्रयोजनार्थ फाइल किया ।

5. उक्त अनुरोध किए जाने के पीछे शुद्धत: आधार यह है कि प्रत्यर्थियों द्वारा नियुक्त माध्यस्थम् अधिकरण युक्तिसंगत अवधि के भीतर प्रभावी परिणाम देने के समर्थ नहीं हो सका और सम्यक् अनुक्रम में सारभूत अवधि व्यतीत हो चुकी है । द्वितीय आधार यह है कि माध्यस्थम् अधिकरण के पीठासीन मध्यस्थ और सदस्य प्रत्यर्थी स्थापन के अधिकारी होने के कारण पूर्वाग्रह से ग्रसित रहते हैं और इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा मध्यस्थ नियुक्त किया जाए ।

6. प्रत्यर्थियों ने जहां तक माध्यस्थम् के अधिदेश के समाप्त किए

जाने की प्रार्थना का संबंध है, उच्च न्यायालय के समक्ष इस आवेदन की पोषणीयता पर विधिक आक्षेप उठाया है ।

7. इस न्यायालय ने मामले के गुणागुण पर विचार करने के पूर्व यह उचित समझा कि सर्वप्रथम उन आक्षेपों का उत्तर दिया जाए जिन्हें प्रत्यर्थियों ने इस बाबत उठाया है कि 'क्या छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय को मध्यस्थ का अधिदेश समाप्त करने और तत्पश्चात् नया मध्यस्थ नियुक्त करने की शक्ति प्राप्त है' ।

8. आवेदक का आक्षेप प्राथमिकत: इस आधार पर केंद्रित है कि छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय को 1993 के अधिनियम की धारा 14 और 15 के अधीन माध्यस्थम् का अधिदेश समाप्त करने और उसको नया मध्यस्थ नियुक्त किए जाने के द्वारा प्रतिस्थापित करने की शक्ति प्राप्त नहीं है ।

9. आवेदक के काउंसेल ने **आई. टी. डी. सिमेंटेशन इंडिया लिमिटेड** बनाम **कोंकण रेलवे कारपोरेशन लिमिटेड**[1] वाले मामले में बाम्बे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए नवीनतम विनिश्चय और **एरोकम्फर्ट अनुष्का जे. वी.** बनाम **उत्तर रेलवे और एक अन्य**[2] वाले मामले और **प्रोडैटर केबल टी. बी. डिजी सर्विसेस** बनाम **सीटी केबल नेटवर्क लिमिटेड**[3] वाले मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चयों का अवलंब लिया और पोषणीयता के आक्षेप को निर्दिष्ट करते हुए निवेदन किया कि उच्च न्यायालय को माध्यस्थम् का अधिदेश समाप्त करने और उसको नए मध्यस्थ की नियुक्ति द्वारा प्रतिस्थापित करने की पूर्णत: शक्ति प्राप्त है ।

10. इस प्रक्रम पर यह सुसंगत होगा कि 1996 के अधिनियम की धारा 14 और 15 के उपबंधों को निर्दिष्ट किया जाए, जिन्हें तुरंत निदेश के लिए नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है :-

"14. **कार्य करने में असफलता या असंभाव्यता** - (1) किसी

---

[1] 2019 एस. सी. सी. ऑनलाईन बाम्बे 5349.

[2] 2017 एस. सी. सी. ऑनलाईन दिल्ली 12737.

[3] 2020 एस. सी. सी. ऑनलाईन दिल्ली 350.

मध्यस्थ का आदेश पर्यवसित हो जाएगा और उसको किसी अन्य मध्यस्थ द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा, यदि वह –

(क) विधित: या वस्तुत: अपने कृत्यों का पालन करने में असफल हो जाता है या अन्य कारणों से असम्यक् विलंब के बिना कार्य करने में असफल रहता है, और

(ख) अपने पद से हट जाता है या पक्षकार उसके आदेश की समाप्ति के लिए करार कर लेते हैं ।

(2) यदि उपधारा (1) के खंड (क) में निर्दिष्ट आधारों में से किसी से संबंधित कोई विवाद शेष रहता है, तो कोई पक्षकार, जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो, न्यायालय को आदेश की समाप्ति पर विनिश्चित करने के लिए आवेदन कर सकेगा ।

(3) यदि इस धारा या धारा 13 की उपधारा (3) के अधीन कोई मध्यस्थ अपने पद से हट जाता है या कोई पक्षकार किसी मध्यस्थ के आदेश की समाप्ति के लिए सहमत हो जाता है, तो उसमें इस धारा या धारा 12 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट किसी आधार पर विधिमान्यता की स्वीकृति अंतर्निहित नहीं होगी ।

15. आदेश की समाप्ति और मध्यस्थ का प्रतिस्थापन – (1) यदि धारा 13 या धारा 14 में निर्दिष्ट परिस्थिति के साथ-साथ किसी मध्यस्थ का आदेश –

(क) जहां वह किसी कारण से अपने पद से हट जाता है, या

(ख) पक्षकारों के करार द्वारा या उसके अनुसरण में समाप्त हो जाएगा ।

(2) जहां किसी मध्यस्थ का आदेश समाप्त हो जाता है, वहां प्रतिस्थानी मध्यस्थ उन नियमों के अनुसार, जो प्रतिस्थापित होने वाले मध्यस्थ की नियुक्ति को लागू थे, नियुक्त किया जाएगा ।

(3) जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा करार न किया गया

हो, जहां कोई मध्यस्थ उपधारा (2) के अधीन प्रतिस्थापित किया जाता है, वहां पहले की गई कोई सुनवाई माध्यस्थम् अधिकरण के विवेकानुसार पुन: की जा सकेगी ।

(4) जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो, उस धारा के अधीन किसी मध्यस्थ के प्रतिस्थापन के पूर्व माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा किया गया कोई आदेश या विनिर्णय केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगा कि माध्यस्थम् अधिकरण की संरचना में कोई परिवर्तन हुआ है ।"

11. 1996 के अधिनियम के अंतर्गत न्यायालय को धारा 2(1)(ङ) के अधीन परिभाषित किया गया है, जिसको भी तुरंत निदेश के लिए नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है :-

"2(1)(ङ)(i) 'न्यायालय' से किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय भी, जो माध्यस्थम् की विषय-वस्तु होने वाले प्रश्नों का, यदि वे वाद की विषय-वस्तु होते, तो विनिश्चय करने की अधिकारिता रखता, किंतु ऐसे प्रधान सिविल न्यायालय से अवर श्रेणी का कोई सिविल न्यायालय या कोई लघुवाद न्यायालय इसके अंतर्गत नहीं आता है ।

(ii) अंतरराष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के मामले में उच्च न्यायालय से आशय ऐसे न्यायालय से है, जो माध्यस्थम् की विषय-वस्तु होने वाले प्रश्नों का, यदि वे वाद की विषय-वस्तु होते, अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करते हुए और अन्य मामलों में उच्च न्यायालय से आशय ऐसे न्यायालय से है, जो उन न्यायालयों जो उस उच्च न्यायालय के अधीनस्थ हैं, की डिक्रियों से उद्भूत अपीलों की सुनवाई की अधिकारिता रखता है ।"

12. न्यायालय की पूर्वोक्त परिभाषा को सरल शब्दों में पढ़े जाने से यह स्पष्टत: दर्शित होता है कि समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों को दृष्टि में रखते हुए 1996 के अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाहियों के प्रयोजनार्थ

'न्यायालय' शब्द से आशय किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय से है । निश्चित रूप से इस परिभाषा में कतिपय मामलों में उच्च न्यायालय भी सम्मिलित हैं । उच्च न्यायालय, जिन्हें न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करने की शक्ति प्राप्त है, जैसाकि 1996 के अधिनियम के अंतर्गत परिभाषित है, के अन्तर्गत वे सभी उच्च न्यायालय होंगे जो पक्षों के मध्य विवाद निर्णीत करने के लिए मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करते हैं ।

13. 'आरंभिक सिविल अधिकारिता रखने वाले उच्च न्यायालयों' की उक्त परिभाषा में प्रयुक्त अभिव्यक्ति में स्पष्टत: उन समस्त उच्च न्यायालयों को विवर्जित किया गया है, जिनको आरंभिक सिविल अधिकारिता प्राप्त नहीं होती । जहां तक छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय का संबंध है, इस उच्च न्यायालय को 2000 के मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम की धारा 21 के अधीन स्थापित किया गया है । स्वीकृतत:, छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय को 'आरंभिक सिविल न्यायालय' की अधिकारिता प्राप्त नहीं है ।

14. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इस न्यायालय को मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता प्राप्त नहीं है, यह न्यायालय स्वयमेव ही न्यायालय की उस परिभाषा से विवर्जित हो जाती है, जैसाकि 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ङ) के अधीन परिभाषित है ।

15. उच्चतम न्यायालय ने **ललित कुमार** बनाम **सांध्वी (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि नीता ललित कुमार सांध्वी और एक अन्य**[1] वाले मामले में इसी प्रकार के एक विवाद्यक पर निर्णय के पैरा 11 से 17 में जो अभिनिर्धारित किया है, वह निम्नलिखित हैं :-

> "11. धारा 14(2) उपबंधित करती है कि यदि माध्यस्थम् के अधिदेश की समाप्ति के संबंध में किसी भी आधार, जैसाकि खंड (क) में निर्दिष्ट है, पर कोई विवाद है, तो 'अधिदेश की समाप्ति पर निर्णय करने के लिए' न्यायालय के समक्ष आवेदन प्रस्तुत

---

[1] (2014) 7 एस. सी. सी. 255 = ए. आई. आर. 2014 एस. सी. (सप्ली.) 1705 = 2014 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 1 = 2014 (3) ए. आई. आर. बाम्बे आर. 208.

किया जा सकता है ।

14. वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर धारा 32(2) के उपखंडों (क) और (ख) के लागू होने को वर्जित किया गया है और हमारा यह मत है कि तारीख 29 अक्तूबर, 2007 का आदेश, जिसके द्वारा अधिकरण ने माध्यस्थम् कार्यवाहियों को समाप्त कर दिया, केवल धारा 32 की उपधारा (2) और उपखंड (ग) की परिधि के अंतर्गत आ सकते हैं अर्थात् कार्यवाही की निरंतरता असंभव हो गई है । धारा 32(3) को दृष्टि में रखते हुए माध्यस्थम् कार्यवाही की समाप्ति के विषय पर माध्यस्थम् अधिकरण का अधिदेश भी समाप्त हो जाता है । अधिनियम की योजना को ध्यान में रखते हुए और विशेष रूप से धारा 32 और धारा 14 को एक साथ पढ़े जाने पर यह प्रश्न कि क्या माध्यस्थम् के अधिदेश को विधित: समाप्त कर दिया गया या नहीं, का परीक्षण न्यायालय द्वारा किया जा सकता है 'जैसाकि धारा 14(2) के अधीन उपबंधित है'।

15. अभिव्यक्ति 'न्यायालय' को धारा 2(1)(ङ) के अधीन परिभाषित किया गया है, जो निम्नलिखित है :-

> **'धारा 2(1)(ङ)** - 'न्यायालय' से किसी जिले में आरंभिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय अभिप्रेत हैं और इसके अंतर्गत अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय भी है, जो माध्यस्थम् की विषय-वस्तु होने वाले प्रश्नों का, यदि वे वाद की विषय-वस्तु होते, तो विनिश्चय करने की अधिकारिता रखता, किंतु ऐसे प्रधान सिविल न्यायालय से अवर श्रेणी का कोई सिविल न्यायालय या कोई लघुवाद न्यायालय इसके अंतर्गत नहीं आता है ।'

16. इसलिए हमारा यह मत है कि अपीलार्थी की यह आशंका कि उनको कोई भी अनुतोष उपलब्ध नहीं होगा, विधि की दृष्टि में आधारहीन है ।

17. अपीलार्थियों को इस बाबत स्वतंत्रता है कि वे माध्यस्थम्

अधिकरण के अधिदेश की समाप्ति की वैधता के विनिर्धारण के लिए सक्षम न्यायालय की शरण में जाएं, जो वास्तव में तारीख 29 अक्तूबर, 2007 के आदेश पर आधारित है जिसके द्वारा माध्यस्थम् कार्यवाहियों को समाप्त कर दिया गया था ।"

16. पूर्ववर्ती अवसर पर भी माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा इसी प्रकार के विचार **आई. एन. सी. और एक अन्य** बनाम **ऐस्सार स्टील्स लिमिटेड**[1] वाले मामले में व्यक्त किए गए, जिसके पैरा 7 से 11 में पुन: 1996 के अधिनियम की धारा 14 से उद्भूत होने वाले विवाद्यकों पर विचार किया गया और यह अभिनिर्धारित किया गया :-

"7. 1996 के अधिनियम की धारा 14 की उपधारा (2) इस प्रकार है -

'यदि उपधारा (1) के खंड (क) में निर्दिष्ट आधारों में से किसी से संबंधित कोई विवाद शेष रहता है, तो कोई पक्षकार, जब तक कि पक्षकारों द्वारा अन्यथा करार न किया गया हो, न्यायालय को आदेश की समाप्ति पर विनिश्चय करने के लिए आवेदन कर सकेगा ।'

8. अत: धारा 14 की उपधारा (2) के निबंधनों के अनुसार आवेदन 1996 के अधिनियम के अर्थान्तर्गत 'न्यायालय' के समक्ष फाइल किया जा सकता है ।

9. अत: वह 'न्यायालय' ही उक्त अधिनियम के उपबंधों के अर्थान्तर्गत न्यायालय है, जो इस मामले के पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए गए इस प्रकार के किसी भी आवेदन पर विचार कर सकता है और उसमें समाविष्ट विवाद का गुणागुण पर विनिर्धारण कर सकता है ।

10. 1940 के अधिनियम के समान ही 'न्यायालय' को धारा 3(1)(ङ) में निम्नलिखित अर्थ में परिभाषित किया गया है :-

'धारा 2(1)(ङ) - 'न्यायालय' से किसी जिले में आरंभिक

---

[1] (2007) 8 स्केल 671 = ए. आई. आर. ऑनलाईन 2007 एस. सी. 57.

अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय भी है, जो माध्यस्थम् की विषय-वस्तु होने वाले प्रश्नों का, यदि वे वाद की विषय-वस्तु होते तो विनिश्चय करने की अधिकारिता रखता, किंतु ऐसे प्रधान सिविल न्यायालय से अवर श्रेणी का कोई सिविल न्यायालय या कोई लघुवाद न्यायालय इसके अंतर्गत नहीं आता है ।'

11. जैसाकि 'न्यायालय' को 1996 के अधिनियम के अंतर्गत ही परिभाषित किया गया है, धारा 14(2) के अधीन कोई भी आवेदन केवल प्रधान सिविल न्यायालय के समक्ष पोषणीय होगा जिसमें अधिकारिता प्राप्त उच्च न्यायालय भी सम्मिलित हो सकता है, किंतु यह न्यायालय सम्मिलित नहीं होगा ।"

17. माननीय उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त दोनों निर्णयों का अवलंब लेते हुए इस उच्च न्यायालय ने भी इसी प्रकार के विवाद्यक पर 2016 की माध्यस्थम् अपील संख्या 80, **राहुल सोमानी और अन्य** बनाम **रामगोपाल सोमानी और अन्य**[1] वाले मामले, जिसमें इस न्यायालय ने तारीख 6 जनवरी, 2017 को पारित अपने निर्णय में यह निष्कर्ष निकाला कि जहां तक माध्यस्थम् के अधिदेश की समाप्ति का संबंध है, इस प्रकार की आज्ञा की समाप्ति से संबंधित आवेदन केवल आरंभिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है और केवल उन उच्च न्यायालयों के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है जो मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करते हैं, उक्त मामले के पैरा 12 और 17 से 20 में जो अभिनिर्धारित किया गया, वह निम्नलिखित हैं :–

"12. 1996 के अधिनियम की धारा 14(2) और धारा 2(1)(ङ)(i) में समाविष्ट उपबंधों को एक साथ पढ़े जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि माध्यस्थम् के अधिदेश की समाप्ति के लिए

---

[1] 2017 ए. आई. आर. सी. सी. 1142 (सी. एच. एच.).

प्रार्थना आरंभिक अधिकारिता रखने वाले प्रधान सिविल न्यायालय के समक्ष की जा सकती है या उस उच्च न्यायालय के समक्ष की जा सकती है जहां उच्च न्यायालय को मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने का अधिकार हो ।

*** *** ***

17. वर्तमान मामले में आवेदक के विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय के समक्ष अपने आवेदन पर बल देने के लिए यह निवेदन करते हुए एक अन्य आधार का अवलंब लिया कि वर्तमान आवेदन माध्यस्थम् के अधिदेश को समाप्त किए जाने और साथ ही नए मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए प्रस्तुत किया गया एक संयुक्त आवेदन है, इसलिए जहां तक इस आवेदन में समाविष्ट प्रार्थना के शेष भाग का संबंध है, आवेदन पोषणीय है ।

18. मैं आवेदक के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों से प्रभावित नहीं हूं क्योंकि जहां तक मध्यस्थ उसकी नियुक्ति के लिए संयुक्त समिति के विलेख के अधीन कार्य कर रहा है और वह मामले से विरत हो गया है, नए मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए द्वितीय आवेदन पोषणीय नहीं है, जब तक कि पूर्व नियुक्त मध्यस्थ के अधिदेश को 1996 के अधिनियम की धारा 14 के अधीन समाप्त नहीं कर दिया जाता ।

19. मैं 1996 के अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन इस न्यायालय की अधिकारिता पर कोई टिप्पणी नहीं कर रहा, यद्यपि माध्यस्थम् का अधिदेश को समाप्त कर दिया गया है, किंतु वर्तमान मामले में इस न्यायालय को नए मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए प्रस्तुत किए गए आवेदन पर विचार करने की अधिकारिता नहीं है ।

20. पूर्वोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए आवेदन को पोषणीय न होने के कारण खारिज किया जाता है । तथापि, आवेदक को स्वतंत्रता होगी कि वह माध्यस्थम् के अधिदेश की

समाप्ति के लिए प्रार्थना करते हुए मूल अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय की शरण में जाए ।"

18. जहां तक उन निर्णयों का संबंध है, जिनका अवलंब आवेदक द्वारा लिया गया वे निर्णय हैं जिनको बाम्बे और दिल्ली उच्च न्यायालयों द्वारा पारित किया गया है और दोनों ही उच्च न्यायालय माध्यस्थम् की विषय-वस्तु सृजित करने वाले प्रश्नों, यदि वे वाद की विषय-वस्तु हैं, को निर्णीत करने के लिए मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करते हैं इसलिए उपरोक्त दोनों उच्च न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों का अवलंब नहीं लिया जा सकता या वे निर्णय लागू नहीं होंगे, जहां तक छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय का संबंध है, चूंकि इस उच्च न्यायालय को मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता प्राप्त नहीं है । अत: पूर्वोक्त निर्णय, जिनका अवलंब आवेदक द्वारा लिया गया, इन्हीं तथ्यों पर विभेद्य हैं ।

19. उपरोक्त पैराग्राफों में उल्लिखित पूर्वोक्त कारणों को दृष्टि में रखते हुए वर्तमान आवेदन अस्वीकार किए जाने योग्य है और तद्नुसार अस्वीकृत किया जाता है और साथ ही आवेदक के लिए इस अधिकार और अवसर को आरक्षित किया जाता है कि वह माध्यस्थम् की आज्ञा की समाप्ति के अनुतोष के लिए मूल अधिकारिता वाले संबद्ध प्रधान सिविल न्यायालय की शरण में जाए और तत्पश्चात् नए मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए 1996 के अधिनियम की धारा 11(6) के अधीन इस उच्च न्यायालय की शरण ले ।

आवेदन खारिज किया गया ।

शु.

प्रो. पी. एल. विश्वेश्वर राव

बनाम

तेलंगाना राज्य और अन्य

(2019 की जनहित याचिका संख्या 149)

तारीख 22 नवंबर, 2019

मुख्य न्यायमूर्ति राघवेंद्र सिंह चौहान और न्यायमूर्ति ए. अभिषेक रेड्डी

मोटरयान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) [2019 के अधिनियम संख्या 32 द्वारा प्रतिस्थापित] – धारा 102, 99, 104 और 67 – निजी प्रचालकों द्वारा किराए पर वाहन चलाने की अनुज्ञा प्रदान किए जाने के बाबत राज्य सरकार की शक्तियां – राज्य यातायात निगम के अतिरिक्त किसी अन्य अतित्व को स्थायी अनुज्ञा प्रदान किए जाने के संबंध में राज्य सरकार पर लागू आंशिक परिसीमा – यह तथ्य कि राज्य सरकार को किसी भी योजना को उपांतरित करने की शक्ति प्राप्त है, यदि ऐसा किया जाना आवश्यक है और जनहित में है, से यह उपदर्शित होता है कि – राज्य को अधिनियम के अधीन योजना विरचित करने की न केवल व्यापक शक्ति प्राप्त है, बल्कि निजी प्रचालकों को अनुज्ञा प्रदान करने की शक्ति भी प्राप्त है ।

मोटरयान अधिनियम, 1988 – धारा 102 और 99 [संविधान, 1950 का अनुच्छेद 31-ख] – निजी प्रचालकों को वाहन चलाने की अनुज्ञा प्रदान किए जाने की संवैधानिक विधिमान्यता – इस आधार पर कि बसों का प्रचालन निजी प्रचालकों द्वारा किए जाने के प्रयोजनार्थ विरचित योजना अधिनियम के अध्याय VI की अतिक्रमणकारी है और अध्याय VI संविधान के अनुच्छेद 31-ख के अधीन संरक्षित है और अध्याय VI के उपबंधों को संविधान के भाग 3 के अतिक्रमणकारी होने के आधार पर चुनौती न दिया जाना – बसों के निजीकरण की योजना विधिमान्य है ।

मोटरयान अधिनियम, 1988 – धारा 102 और 99 [संविधान,

1950 का अनुच्छेद 31-ख और अनुसूची 9] – संविधान की अनुसूची 9 की मद संख्या 125 में मोटरयान अधिनियम के अध्याय VI का उल्लेख नहीं है – अध्याय VI के किसी भी उपबंध को इस बाबत चुनौती नहीं दी गई कि वह संविधान के भाग 3 का अतिक्रमणकारी है – बसों का प्रचालन निजी प्रचालकों द्वारा किए जाने की योजना को विधिमान्य अभिनिर्धारित किया जाना उचित है ।

प्रो. पी. एल. विश्वेश्वर राव, जो जनकल्याण भावना से ओतप्रोत व्यक्ति हैं, तेलंगाना डेमोक्रेटिक फोरम के संयोजक हैं और तेलंगाना जन समिति के अध्यक्ष हैं, ने तारीख 2 नवंबर, 2019 के मंत्रिमंडल विनिश्चय, जिसके द्वारा मंत्रिमंडल ने निजी यातायात प्रचालकों को किराए पर चलने वाले 5100 वाहनों की अनुज्ञा प्रदान किए जाने का निर्णय लिया, की विधिमान्यता को चुनौती देते हुए यह जनहित याचिका फाइल की । संक्षेप में मामले के तथ्य यह है कि तेलंगाना राज्य यातायात निगम, जो इस मामले में प्रत्यर्थी संख्या 3 है, का पूर्व में नाम आंध्र प्रदेश राज्य यातायात निगम था । यह निगम वर्ष 2016 में स्थापित किया गया था । वर्तमान में इस निगम में लगभग 48 हजार कर्मकार कार्यरत हैं । इस निगम के पास 10,500 बसें हैं जिनका प्रचालन संपूर्ण तेलंगाना राज्य में 3726 अधिसूचित मार्गों पर होता है । आंध्र प्रदेश राज्य सड़क यातायात निगम के कर्मकारों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यापार संघों ने सितंबर, 2019 में इस निगम को सूचना जारी की, जिसमें उन्होंने दावा किया कि यदि उनकी मांगों को निगम और राज्य सरकार द्वारा पूर्ण नहीं किया गया, तो वे हड़ताल पर चले जाएंगे । 1947 के औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 12 के अधीन नियुक्त सुलह अधिकारी द्वारा सर्वोत्तम प्रयास किए जाने के बावजूद भी कर्मकारों और निगम के मध्य विवाद का निपटारा नहीं हो सका । इसलिए तारीख 5 अक्तूबर, 2019 को निगम के कर्मकारों ने हड़ताल आरंभ कर दी । यहां तक कि वर्तमान में भी व्यापार संघों द्वारा हड़ताल जारी है । हड़ताल की निरंतरता के दौरान राज्य मंत्रिमंडल ने तारीख 2 नवंबर, 2019 को निजी यातायात प्रचालकों को किराए पर दिए जाने वाले वाहनों की 5100 अनुज्ञाएं प्रदान किए जाने का निर्णय ले

लिया । उक्त निर्णय से व्यथित होकर यह जनहित याचिका फाइल की गई । जनहित याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – उक्त अनुच्छेद के मात्र परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह अनुच्छेद मात्र उन अधिनियमों और विनियमों, जिनका उल्लेख संविधान की नवीं अनुसूची में किया गया है, को चुनौती दिए जाने से इस आधार पर संरक्षण के लिए उपबंधित करता है, कि उक्त अधिनियम के उपबंध 'इस भाग के किन्हीं उपबंधों द्वारा प्रदत्त किसी अधिकार' को न्यून करते हैं, अर्थात् संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को । स्वीकृततः, संविधान की नवीं अनुसूची की मद संख्या 125 में 1939 के अधिनियम के अध्याय IV-क, जो 1988 के अधिनियम के अध्याय VI में विद्यमान है, का उल्लेख नहीं है, इसलिए संविधान का अनुच्छेद 31-ख मात्र यह अभिकथित करता है कि 1988 के अधिनियम के अध्याय VI के उपबंधों को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि यह उपबंध संविधान के भाग 3 के अधीन प्रदत्त शक्तियों में से किसी भी शक्ति को न्यून करते हैं या उसका अतिक्रमण करते हैं । तथापि, याची ने 1988 के अधिनियम के अध्याय VI के किसी भी उपबंध को संविधान के भाग 3 का उल्लंघनकारी होने के आधार पर चुनौती नहीं दी है । इसलिए याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई प्रथम दलील कि अनुच्छेद 31-ख सपठित संविधान की नवीं अनुसूची 1988 के अधिनियम के अध्याय VI को संरक्षण प्रदान करती है, इसलिए मंत्रिमंडल द्वारा लिया गया विनिश्चय 1988 के अधिनियम के अध्याय VI का अतिक्रमण नहीं करता और उनकी यह दलील बिल्कुल भी मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं है । 1988 के अधिनियम का अध्याय VI, जैसाकि इसके शीर्षक से स्पष्ट होता है, 'राज्य यातायात उपक्रमों से संबंधित विशेष उपबंधों' के लिए विहित करता है । उक्त अध्याय 1988 से विद्यमान है । उक्त अध्याय का निर्वचन करते हुए इस बात का विस्मरण नहीं किया जा सकता कि वर्ष 1950 में संसद् ने राज्य यातायात निगम अधिनियम अधिनियमित किया था । चूंकि वर्ष 1950 में देश को तुरंत ही स्वतंत्रता मिली थी, इसलिए यह आवश्यक था कि यातायात क्षेत्र को लोक उपक्रमों द्वारा

चलाया जाए । इसका एक कारण यह भी था कि सुसंगत समय-बिंदु पर कोई भी निजी अस्तित्व इतना विशाल नहीं था कि वह देश के बड़े भाग में बसों का प्रचालन कर सकता । इसलिए, यह आवश्यक था कि उक्त अधिनियम के अंतर्गत राज्य यातायात निगम सृजित किए जाएं । इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1988 के अधिनियम के अध्याय VI के अंतर्गत राज्य यातायात निगमों के सृजन, उनको चलाए जाने, उनकी संपन्नता और उनको प्रोन्नत किए जाने पर बल दिया गया । इसी प्रकाश में 1988 के अधिनियम की धारा 98, 99 और 104 विरचित की गई । वास्तव में यह कहा जाना घिसापिटा है कि किसी अधिनियम के उपबंधों का निर्वचन करते हुए उस अधिनियम के बारे में समग्र दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए : किसी भी अधिनियम को थोड़ा-थोड़ा करके नहीं पढ़ा जा सकता है । इसलिए, 1988 के अधिनियम के अध्याय V और VI के उपबंधों का निर्वचन उस अधिनियम में और उस अध्याय में विद्यमान अन्य उपबंधों के प्रकाश में किया जाना चाहिए । यद्यपि उक्त उपबंध 1988 के अधिनियम को अध्याय VI के उपबंध की सर्वोच्चता के लिए उपबंधित करता है, फिर भी यह सर्वोच्चता मात्र इस सीमा तक सीमित है जब '1988 के अधिनियम के अध्याय VI और V के उपबंधों के मध्य असंगतता' हो । याची का यह पक्षकथन नहीं है कि 1988 के अधिनियम के अध्याय VI और V के उपबंधों के मध्य असंगतता है । इसलिए, याची के विद्वान् काउंसेल का यह दावा गलत है कि 1988 के अधिनियम के अध्याय VI के उपबंधों को अध्याय V के उपबंधों पर पूर्विकता प्रदान की जानी चाहिए । 1988 के अधिनियम की धारा 98 में परिकल्पित स्थिति वर्तमान मामले में उद्भूत नहीं हुई है । इसलिए, यह दलील मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं है । क्योंकि, 1988 के अधिनियम के अध्याय VI में धारा 99, 104 और 102 विद्यमान हैं, इसलिए प्रथम दोनों उपबंधों का निर्वचन अंतिम उपबंध के प्रकाश में किया जाना चाहिए । इन तीनों उपबंधों को संयुक्त रूप से पढ़े जाने पर कतिपय प्रमुख लक्षण प्रकट होते हैं, (i) 1988 के अधिनियम की धारा 99 राज्य सरकार को राज्य यातायात निगम के पक्ष में किसी योजना को विरचित किए जाने की शक्ति प्रदान करती है ; 1988 के अधिनियम

की धारा 99(2) सरकार को किसी अन्य अस्तित्व को स्थाई अनुज्ञा प्रदान किए जाने से वर्जित करती है ; (ii) 1988 के अधिनियम की धारा 104 पुन: सरकार को राज्य यातायात निगम के अतिरिक्त किसी अन्य अस्तित्व को किसी अधिसूचित मार्ग पर या अधिसूचित क्षेत्र के लिए कोई अनुज्ञा प्रदान करने से प्रतिषिद्ध करती है । फिर भी 1988 के अधिनियम की धारा 102 सरकार को किसी योजना को उपांतरित किए जाने के प्रयोजनार्थ अनुज्ञा प्रदान करती है, यदि ऐसा किया जाना आवश्यक है और जनहित में है । अत:, 1988 के अधिनियम की धारा 102 इसी अधिनियम की धारा 99 और 104 का अपवाद है । (iii) किंतु 1988 के अधिनियम की धारा 99 और 104 के अधीन सरकार पर आंशिक रूप से परिसीमा के होते हुए भी 1988 के अधिनियम की धारा 102 के अधीन योजना को उपांतरित करने की शक्ति प्राप्त होती है । (iv) राज्य सरकार को किसी योजना को उपांतरित करने की शक्ति प्राप्त होती है, परंतु यह तब जबकि इस प्रकार का कोई भी उपांतरण आवश्यक हो और जनहित में हो और 1988 के अधिनियम की धारा 102 द्वारा विहित प्रक्रिया का अनुसरण शब्दश: किया गया हो । इसलिए, याची के विद्वान् काउंसेल यह दावा करते हुए न्यायानुमत हैं कि राज्य सरकार द्वारा 1988 के अधिनियम की धारा 99 और 104 के प्रकाश में धारा 67 और 102 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का अवलंब नहीं लिया जा सकता । 1988 के अधिनियम की धारा 104 के संबंध में याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा प्रस्तुत किए गए निर्वचन कि 1988 के अधिनियम की धारा 104 अधिसूचित क्षेत्रों या अधिसूचित मार्गों के संबंध में अनुज्ञा प्रदान किए जाने को निर्बंधित करती है, तदद्वारा 1988 के अधिनियम की धारा 102 के अधीन योजनाओं को उपांतरित किए जाने की राज्य सरकार की शक्ति को उनके द्वारा आक्षेपित किया जाना स्वीकार नहीं किया जा सकता । सर्वप्रथम, यदि इस प्रकार के किसी निर्वचन को स्वीकार किया जाता है, तो 1988 के अधिनियम की धारा 104 के प्रकाश में धारा 102 निरर्थक हो जाएगी । ऐसा कोई भी निर्वचन, जो किसी उपबंध को निरर्थक कर दे, स्पष्टत: अस्वीकार्य है । द्वितीयत:, 1988 के अधिनियम की धारा 104 के अधीन प्रदान की गई

अनुज्ञाएं अधिसूचित क्षेत्रों या अधिसूचित मार्गों के संबंध में अनुज्ञाएं प्रदान किए जाने के बाबत हैं । जबकि 1988 के अधिनियम की धारा 102 सपठित धारा 67 के अधीन परिकल्पित योजना का उपांतरण सरकार को अनुज्ञाएं प्रदान किए जाने के संबंध में योजना को उपांतरित किए जाने के प्रयोजनार्थ सशक्त करता है जैसे कि किराए पर दिए जाने वाले वाहनों की अनुज्ञाएं । इसलिए यह दलील स्पष्टत: टिकने योग्य नहीं है । इसके अतिरिक्त, 1988 के अधिनियम की धारा 102 के उपबंधों का निर्वचन करते हुए नवीनतम संशोधित धारा 67 का अनदेखा नहीं किया जा सकता । वैश्वीकरण के कारण लाए जा रहे परिवर्तनों, लोगों की आवश्यकताओं लोगों की बढ़ती हुई प्रत्याक्षाओं और इस तथ्य के आधार पर कि अहस्तक्षेप रहित और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के शासन में आ जाने को ध्यान में रखते हुए 'प्रतिस्पर्धा' को हतोत्साहित किए जाने के बजाए अधिक बढ़ावा दिया गया है । 1988 के अधिनियम को यातायात क्षेत्र में प्रगति किए जाने, उसको अधिक प्रतियोगी बनाए जाने, उसको यात्रियों के लिए अधिक सुविधाजनक बनाए जाने, सड़क सुरक्षा को सुनिश्चित करते हुए अधिक भीड़ को रोके जाने के लिए संशोधित किया गया था । इसके अतिरिक्त 1988 के अधिनियम की धारा 67(3) को नवीनतम रूप से तारीख 1 सितंबर, 2019 को पुर:स्थापित किया गया है । 1988 के अधिनियम की धारा 67 और 102 के मात्र परिशीलन से यह स्पष्टत: हो जाता है कि पूर्ववर्ती उपबंध के अधीन सड़क यातायात को नियंत्रित करने की शक्ति पूर्णतया राज्य सरकार में निहित है । उक्त शक्ति को आवश्यक रूप से 1988 के अधिनियम के अध्याय VI में समाविष्ट धारा 102 के अधीन राज्य सरकार को प्रदान की गई शक्ति के साथ पढ़ा जाना चाहिए । 1988 के अधिनियम की धारा 67 सपठित धारा 102 को संयुक्त रूप से पढ़े जाने पर कतिपय सुसंगत पहलू स्पष्ट रूप से सामने आ जाते हैं, (i) राज्य सरकार को सड़क यातायात को नियंत्रित करने की पर्याप्त शक्ति प्राप्त है ; और (ii) राज्य सरकार को यातायात सेवा प्रदाताओं के मध्य प्रतियोगिता सृजित करने की पर्याप्त शक्ति है । शब्द 'यातायात सेवा प्रदाता' में राज्य यातायात निगम और निजी क्षेत्र के प्रचालक, दोनों सम्मिलित हैं । इस

प्रकार की किसी भी प्रतियोगिता को राज्य सरकार द्वारा 1988 के अधिनियम की धारा 67(1) में परिभाषित प्राचलों को ध्यान में रखते हुए सृजित किया जा सकता है, अर्थात् यात्रियों की सुविधा, आर्थिक रूप से प्रतियोगी किराए, अत्यधिक भीड़ का निवारण और सड़क सुरक्षा । 1988 के अधिनियम की धारा 67 की उपधारा (3) में एक कदम आगे बढ़कर प्रावधान हैं और यह धारा शब्दों 'इस अधिनियम में समाविष्ट किसी बात के होते हुए भी' के साथ सर्वोपरि खंड के साथ आरंभ होती है, तद्द्वारा यह धारा विवक्षित करती है कि 1988 के अधिनियम के अध्याय VI में समाविष्ट बाधा का अनदेखा किया जा सकता है, यदि राज्य सरकार 1988 के अधिनियम की धारा 67(3) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का अवलंब ले । उक्त उपबंध के अधीन राज्य सरकार इस अधिनियम के अधीन जारी की गई किसी अनुज्ञा को यात्रियों के यातायात के लिए, यातायात में विकास और कार्यकुशलता को प्रोन्नत किए जाने के लिए, उपधारा (3)(क) से (ड) में उल्लिखित विभिन्न कारणोंवश, जिनमें 'यातायात के साधनों के मध्य यातायात प्रणाली के एकीकरण और संयोजकता को बढ़ावा देना भी सम्मिलित है', उपांतरित कर सकती है । शब्द 'यातायात के साधन' में न केवल यातायात के विभिन्न साधन सम्मिलित होंगे, बल्कि ऐसे विभिन्न घटक भी सम्मिलित होंगे जो यातायात के साधनों को प्रस्तावित करते हैं । 1988 के अधिनियम की धारा 102 का निर्वचन आवश्यक रूप से राज्य सरकार को प्रदान की गई व्यापक शक्तियों के प्रकाश में 1988 के अधिनियम की धारा 67 के अधीन सड़क यातायात को नियंत्रित किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जाना चाहिए । धारा 102 1988 के अधिनियम की धारा 67 के आशय और प्रयोजन को क्रियान्वित किए जाने के प्रयोजनार्थ राज्य सरकार उपलब्ध को एकमात्र साधन है । 1988 के अधिनियम की धारा 102 राज्य सरकार को किसी भी योजना को उपांतरित करने की अनुज्ञा प्रदान करती है, परंतु यह तब जबकि वह उपांतरण आवश्यक और जनहित में विचारित किया जाए । (पैरा 8, 9, 10, 12, 20, 21, 22, 24, 25 और 26)

आरंभिक रिट अधिकारिता : 2019 की जनहित याचिका संख्या 149.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 32 के अधीन जनहित याचिका ।

याची की ओर से	श्री चिक्कुडू प्रभाकर
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री बी. एस. प्रसाद और जे. रामचंद्र राव

आदेश

प्रो. पी. एल. विश्वेश्वर राव, जो एक जनकल्याण भावना से ओतप्रोत व्यक्ति है, तेलंगाना डेमोक्रटिक फोरम के संयोजक हैं और तेलंगाना जन समिति के अध्यक्ष हैं, ने तारीख 2 नवंबर, 2019 के मंत्रिमंडल के विनिश्चय, जिसके द्वारा मंत्रिमंडल ने निजी यातायात प्रचालकों को 5100 किराए पर चलने वाले वाहनों की अनुज्ञा प्रदान किए जाने का निर्णय लिया की विधिमान्यता को चुनौती देते हुए यह जनहित याचिका फाइल की ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य यह है कि तेलंगाना राज्य यातायात निगम (संक्षेप में 'निगम'), जो इस मामले में प्रत्यर्थी संख्या 3 है, का पूर्व में नाम आंध्र प्रदेश राज्य सड़क यातायात निगम था । यह निगम वर्ष 2016 में स्थापित किया गया था । वर्तमान में इस निगम में लगभग 48 हजार लोग कार्यरत हैं । इस निमग के पास 10,500 बसें हैं जो संपूर्ण तेलंगाना राज्य में 3726 अधिसूचित मार्गों पर चलाई जाती हैं ।

3. कर्मकारों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यापार संघों ने सितंबर, 2019 में इस निगम को सूचना जारी की, जिसमें उन्होंने दावा किया कि यदि उनकी मांगों को निगम और राज्य सरकार द्वारा पूर्ण नहीं किया गया, तो वे हड़ताल पर चले जाएंगे । 1947 के औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 12 के अधीन नियुक्त सुलह अधिकारी द्वारा सर्वोत्तम प्रयास किए जाने के बावजूद भी सुलह कार्यवाहियों में कर्मकारों और निगम के मध्य कोई निपटारा नहीं हो सका । इसलिए तारीख 5 अक्तूबर, 2019 को निगम के कर्मकारों ने हड़ताल कर दी । यहां तक की आज भी व्यापार संघों द्वारा हड़ताल जारी है । हड़ताल की निरंतरता के दौरान राज्य मंत्रिमंडल ने तारीख 2 नवंबर, 2019 को निजी यातायात

प्रचालकों को किराए पर दिए जाने वाले वाहनों की 5100 अनुज्ञाएं प्रदान किए जाने का निर्णय ले लिया । उक्त निर्णय से व्यथित होकर यह जनहित याचिका फाइल की गई । याची के विद्वान् काउंसेल श्री प्रभाकर चिक्कुडू ने इस न्यायालय के समक्ष निम्नलिखित दलीलें दी :–

"(i) प्रथमतः, संविधान का अनुच्छेद 31-ख कुछ अधिनियमों और विनियमों के संरक्षण के लिए उपबंधित करता है जो संविधान की नवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं । संविधान की नवीं अनुसूची की मद संख्या 125 में विनिर्दिष्ट रूप से धारा 66-क और 1939 के मोटरयान अधिनियम के अध्याय IV-क का उल्लेख है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार 1939 के मोटरयान अधिनियम का अध्याय IV-क का वर्तमान में 1988 के मोटरयान अधिनियम (संक्षेप में '1988 का अधिनियम') का अध्याय VI है । इसलिए विद्वान् काउंसेल के अनुसार 1988 के अधिनियम के अध्याय VI को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त है ।

(ii) द्वितीयतः, 1988 के अधिनियम का अध्याय VI 'राज्य यातायात उपक्रमों से संबंधित विशेष उपबंध' से संबंधित है । इसलिए यह अध्याय निगम को आच्छादित करता है ।

(iii) तृतीयतः, 1988 के अधिनियम की धारा 98 के अनुसार 1988 के अधिनियम के अध्याय VI के उपबंध और इस अध्याय के अंतर्गत बनाए गए नियम और आदेश 'अध्याय V में समाविष्ट किसी अन्य असंगत बात या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में समाविष्ट होते हुए भी या ऐसी किसी विधि को दृष्टि में रखते हुए किसी लिखत के प्रभावी होते हुए भी, प्रभावी होंगे' । इसलिए, विद्वान् काउंसेल के अनुसार 1988 के अधिनियम के अध्याय VI को अधिनियम के अध्याय V पर सर्वोच्चता प्राप्त है ।

(iv) चतुर्थतः, 1988 के अधिनियम का अध्याय V 'यातायात यानों के नियंत्रण' पर विचार करता है । यद्यपि 1988 के अधिनियम की धारा 67 राज्य सरकार को 'सड़क परिवहन को नियंत्रित करने' के लिए सशक्त करती है, किंतु उक्त उपबंध के

अधीन प्रदत्त शक्ति अनिर्बंधित नहीं है और उसका अवलंब 1988 के अधिनियम के अध्याय VI के उपबंधों का अनदेखा किए जाने या उनका जानबूझकर पालन न किए जाने के प्रयोजनार्थ नहीं लिया जा सकता ।

(v) पंचमत:, 1988 के अधिनियम की धारा 99 राज्य सरकार को किसी राज्य यातायात उपक्रम की सड़क यातायात सेवा के संबंध में प्रस्ताव बनाने और उसको प्रकाशित करने के लिए सशक्त करती है । इन योजनाओं को राज्य सरकार द्वारा बनाया जाना होता है । 1988 के अधिनियम की धारा 99(2) के अनुसार यदि एक बार किसी योजना को राज्य यातायात निगम के पक्ष में प्रकाशित कर दिया जाता है, तो किसी भी व्यक्ति को अधिसूचित मार्गों के संबंध में स्थाई रूप से अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती । केवल अस्थायी अनुज्ञा प्रदान की जा सकती है और वह भी एक वर्ष की अवधि के लिए । इसके अतिरिक्त, 1988 के अधिनियम की धारा 104 के अनुसार यदि एक बार कोई क्षेत्र या मार्ग अधिसूचित कर दिया जाता है, तो राज्य सरकार द्वारा कोई अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती इसलिए, विद्वान् कांउसेल के अनुसार निजी यातायात प्रचालकों से संबंधित 5100 बसों को किराए पर चलाए जाने वाले वाहनों की अनुज्ञा प्रदान किए जाने का राज्य मंत्रिमंडल का विनिश्चय न केवल 1988 के अधिनियम की धारा 99 और 104 का अतिक्रमण है, बल्कि उक्त विनिश्चय 1988 के अधिनियम के अध्याय V के अधीन अध्याय VI के अधीन भी है, चूंकि उक्त विनिश्चय कानूनी उपबंधों के विपरीत है, इसलिए यह एक मनमानापूर्ण और अयुक्तियुक्त विनिश्चय है । उक्त विनिश्चय कानूनी उपबंधों के विरुद्ध है इसलिए विद्वान् काउंसेल ने बृजमोहन लाल **बनाम** भारत संघ (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लेते हुए अभिवाक् किया कि राज्य मंत्रिमंडल द्वारा लिया गया विनिश्चय न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन होता है । अत:, इस न्यायालय द्वारा इस विनिश्चय को समाप्त कर दिया जाना चाहिए ।

(vi) षष्ठमत:, निजी यातायात प्रचालकों को अनुज्ञा प्रदान किए

जाने का परिणाम यह होगा कि निगम के कर्मकार बिना कार्य के हो जाएंगे । इसलिए, मंत्रिमंडल विनिश्चय संविधान के अनुच्छेदों 16, 19 और 21 के अधीन कर्मकारों के मूल अधिकारों का अतिक्रमण है ।

(vii) अंतिमत:, कर्मकारों की हड़ताल के दौरान निगम का प्रबंध तंत्र और राज्य सरकार, दोनों ही औद्योगिक विवाद अधिनियम के उपबंधों के अधीन कर्मकारों से सम्यक् रूप से वार्ता करने के विधिक कर्तव्य के अधीन है । इसलिए, राज्य मंत्रिमंडल द्वारा तारीख 2 नवंबर, 2019 को लिया गया विनिश्चय दूषित है । विद्वान् काउंसेल ने राज्य सरकार के आचरण पर प्रकाश डालते हुए आगे अभिवाक् किया कि सरकार निगम को समाप्त करने के अंतरस्थ हेतु के अंतर्गत कार्य कर रही है । इसलिए आक्षेपित विनिश्चय निगम को नष्ट करने और निजी यातायात प्रचालकों को प्रोन्नत करने के अंतरस्थ हेतु पर आधारित है । विद्वान् काउंसेल ने **बृजमोहन लाल** (उपरोक्त) वाले मामले का अवलंब लेते हुए निवेदन किया कि चूंकि मंत्रिमंडल विनिश्चय अंतरस्थ हेतु पर अधारित है चूंकि यह विनिश्चय दूषित हेतु के साथ लिया गया है, इसलिए विनिश्चय मनमानापूर्ण और अयुक्तियुक्त है और यह विनिश्चय इस न्यायालय द्वारा अपास्त किए जाने योग्य है ।"

4. इसके विपरीत तेलंगाना राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान् महाधिवक्ता श्री बी. एस. प्रसाद ने निम्नलिखित खंडन दलीलें दीं :–

"(i) प्रथमत:, संविधान के अनुच्छेद 31-ख के अधीन उपबंधित संरक्षण किसी अधिनियम या विनियम को इस आधार पर चुनौती दिए जाने के प्रयोजनार्थ है कि वह अधिनियम या विनियम उन मूल अधिकारों का अतिक्रमण करने वाला है, जो संविधान के भाग 3 में विहित हैं । तथापि, 1988 के अधिनियम के अध्याय VI के किसी भी उपबंध को याची द्वारा इस आधार चुनौती नहीं दी गई है कि वह लोगों को मूल अधिकारों का अतिक्रमण करने वाला है । इसलिए, संविधान का अनुच्छेद 31-ख सपठित संविधान की नवीं अनुसूची और 1988 के अधिनियम के अध्याय VI द्वारा उपबंधित संरक्षण याची की किसी भी प्रकार से सहायता नहीं करते ।

(ii) द्वितीयत:, अधिनियम का निर्वचन करते हुए समस्त उपबंधों को एक साथ पढ़ा जाना आवश्यक है : प्रत्येक अध्याय को उसकी सुभिन्न स्थिति किंतु अधिनियम के निर्माताओं द्वारा बनाई गई योजना के भीतर समनुदेशित की जानी चाहिए।

(iii) चूंकि 1988 के अधिनियम की धारा 98 इस अधिनियम के अध्याय VI के उपबंधों को सर्वोच्चता प्रदान करती है, अत: स्पष्टत: इस धारा में यह शब्द समाविष्ट हैं कि इस अध्याय के उपबंध अध्याय V में समाविष्ट किसी अन्य बात के साथ असंगत होते हुए भी प्रभावी होंगे । तथापि, याची का यह पक्षकथन नहीं है कि 1988 के अधिनियम के अध्याय V और VI के मध्य कोई असंगतता है । वास्तव में दोनों ही अध्याय संसद् के आशय को सुदृढ़ किए जाने के प्रयोजनार्थ एक साथ पढ़े जाने चाहिए ।

(iv) 1988 के अधिनियम की धारा 67 को अभी हाल में ही तारीख 1 सितंबर, 2019 को संशोधित किया गया है । जबकि 1988 के अधिनियम की धारा 67(1) के उपबंधों को नए उपबंधों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है, फिर भी 1988 के अधिनियम की धारा 67(3) उक्त धारा का नवीनतम रूप से जोड़ा गया भाग है । विद्वान् महाधिवक्ता के अनुसार 1988 के अधिनियम के अध्याय VI के उपबंधों का निर्वचन करते हुए संशोधित धारा 67 के पीछे के दर्शन को ध्यान में रखा जाना होगा । विद्वान् महाधिवक्ता के अनुसार 1988 के अधिनियम की धारा 67 राज्य सरकार को 'सड़क यातायात नियंत्रित करने की' संपूर्ण शक्ति प्रदान करती है ।

इसके अतिरिक्त 1988 के अधिनियम की धारा 67(1)(घ) स्पष्टत: अभिकथित करती है कि राज्य सरकार 'यातायात सेवा प्रदाताओं के मध्य प्रभावी प्रतियोगिता को प्रोन्नत' किए जाने को ध्यान में रखते हुए यातायात पर नियंत्रण रखेगी । विद्वान् माहधिवक्ता के अनुसार 'यातायात सेवा प्रदाताओं' शब्द में आवश्यकत: राज्य यातायात निगम सम्मिलित होगा । पुन:, 'प्रतियोगिता' शब्द का प्रयोग स्पष्टत: उपदर्शित करता है कि

सरकार राज्य यातायात निगम और किसी अन्य अस्तित्व के मध्य प्रतियोगिता के तत्व को पुर:स्थापित कर सकती है । 1988 के अधिनियम की धारा 67(1) की एकमात्र अपेक्षा यह है कि इस प्रकार की किसी भी प्रतियोगिता को 'यात्रियों की सुविधा, आर्थिक रूप से प्रतियोगी किराए, भीड़ भाड़ की रोकथाम और सड़क सुरक्षा' को ध्यान में रखते हुए पुर:स्थापित किया जाना चाहिए ।

(v) पंचमत:, 1988 के अधिनियम की धारा 67(3), जो नवीनतम अंत:स्थापित उपबंध है, सर्वोपरि खंड के साथ आरंभ होती है और राज्य को यात्रियों के यातायात के लिए योजना बनाने और अधिनियम के अधीन जारी की गई किसी अनुज्ञा को उपांतरित किए जाने के प्रयोजनार्थ सशक्त करती है । इसके अतिरिक्त उक्त शक्ति को आवश्यक रूप से 1988 के अधिनियम की धारा 102 के समर्थन में पढ़ा जाना होगा, जो 1988 के अधिनियम के अध्याय VI के अंतर्गत आती है । 1988 के अधिनियम की धारा 102 कतिपय प्रक्रिया का अनुपालन किए जाने के पश्चात् किसी अनुमति प्राप्त योजना को उपांतरित किए जाने के प्रयोजनार्थ राज्य सरकार को सशक्त करती है । इसलिए, विद्वान् महाधिवक्ता के अनुसार 1988 के अधिनियम की धारा 67(1)(घ) के अधीन मंत्रिमंडल द्वारा अपनी शक्ति का अवलंब लेते हुए लिया गया विनिश्चय और 1988 के अधिनियम की धारा 102 के अधीन विहित प्रक्रिया का आरंभ किया जाना विधि के कड़ाईपूर्वक पुष्टिकरण में है । इसलिए, उक्त विनिश्चय न तो मनमानापूर्ण है और न ही अयुक्तियुक्त । वास्तव में यह विनिश्चय युक्तिसंगत, उचित और निष्पक्ष है ।

(vi) षष्ठमत:, यद्यपि निजी यातायात प्रचालकों के पुर:स्थापन के परिणामस्वप कर्मकारों की छंटनी हो सकती है, किंतु यह छंटनी विधि द्वारा विहित प्रक्रिया और शक्ति के कारण होगी । इसलिए आक्षेपित विनिश्चय संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण नहीं करता ।

(vii) सप्तमत:, हड़ताल के दौरान राज्य के लोगों की परेशानियों, और यातायात क्षेत्र में नई ऊर्जा भरे जाने की

आवश्यकता पर विचार करते हुए और इस तथ्य पर भी विचार करते हुए कि निगम घाटे पर चल रहा है, मंत्रिमंडल के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वे निजी यातायात प्रचालकों को अनुज्ञा प्रदान करने का निर्णय ले । यह विनिश्चय न केवल यातायात क्षेत्र को अधिक प्रतियोगी बनाता है, बल्कि बड़ी संख्या में लोगों के लाभ के लिए इस क्षेत्र को मजबूती भी प्रदान करता है । इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह विनिश्चय 'अंतरस्थ हेतु के लिए' या 'बदनियती' के साथ लिया गया था । विद्वान् महाधिवक्ता के अनुसार यह राज्य का प्राथमिक कर्तव्य और प्रभुसत्ता संपन्न कार्य है कि वह इस बात को सुनिश्चित करे कि बड़ी संख्या में लोगों को यातायात की सुविधा अविलंब उपलब्ध कराई जाए । इसलिए यह विनिश्चय 1988 के अधिनियम की धारा 67 सपठित धारा 102 की संपूर्ण योजना, आशय और प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए लिया गया एक युक्तिसंगत विनिश्चय है

(viii) अंततः, विद्वान् महाधिवक्त के अनुसार यद्यपि याची का दावा यह है कि यह विनिश्चय बदनियती और अंतरस्थ हेतु के साथ लिया गया है और इस विनिश्चय को सही साबित करने के लिए कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया, इसलिए, बिना किसी साक्षिक आधार के मात्र निष्कर्ष पर पहुंचने के प्रयोजनार्थ याची की दलीलों को बल नहीं मिलता । इसलिए, विद्वान् महाधिवक्ता के अनुसार याचिका इस न्यायालय द्वारा खारिज किए जाने योग्य है ।"

5. पक्षों के विद्वान् काउंसेल को सुना और मंत्रिमंडल द्वारा लिए गए विनिश्चय का परिशीलन किया ।

6. विद्वान् महाधिवक्ता के अनुसार मंत्रिमंडल द्वारा लिया गया विनिश्चय एक गोपनीय दस्तावेज होता है । इसलिए, मंत्रिमंडल द्वारा लिए गए विनिश्चय की अंतर्वस्तु को निर्णय में प्रत्युत्पादित नहीं किया जा रहा । मात्र यही कहना पर्याप्त होगा कि मंत्रिमंडल द्वारा लिए गए विनिश्चय का मर्म यह है कि राज्य यातायात प्राधिकरण को सम्यक् रूप से प्रक्रिया आरंभ करने के लिए 1988 के अधिनियम की धारा 67(1)(घ) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का अवलंब लेते हुए निजी यातायात प्रचालकों

को किराए पर चलाए जाने वाले 5100 वाहनों की अनुज्ञा प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ अनुज्ञा प्रदान की जाती है, जैसाकि 1988 के अधिनियम की धारा 102 में समाविष्ट है ।

7. संविधान का अनुच्छेद 31-ख निम्नलिखित है :-

> "**31ख. कुछ अधिनियमों और विनियमों का विधिमान्यकरण** - अनुच्छेद 31-क में अंतर्विष्ट उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना नवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट अधिनियमों और विनियमों में से और उनके उपबंधों में से कोई इस आधार पर शून्य या कभी शून्य हुआ नहीं समझा जाएगा कि वह अधिनियम, विनियम या उपबंध इस भाग के किन्हीं उपबंधों द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी से असंगत है या उसे छीनती है या न्यून करती है और किसी न्यायालय या अधिकरण के किसी प्रतिकूल निर्णय, डिक्री या आदेश के होते हुए भी उक्त अधिनियमों और विनियमों में से प्रत्येक, उसे निरसित या संशोधित करने की किसी सक्षम विधानमंडल की शक्ति के अधीन रहते हुए, प्रवृत्त बना देगा ।"

8. उक्त अनुच्छेद के मात्र परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह अनुच्छेद मात्र उन अधिनियमों और विनियमों, जिनका उल्लेख संविधान की नवीं अनुसूची में किया गया है को चुनौती दिए जाने से इस आधार पर संरक्षण के लिए उपबंधित करता है, कि उक्त अधिनियम के उपबंध 'इस भाग के किन्हीं उपबंधों द्वारा प्रदत्त किसी अधिकार' को न्यून करते हैं, अर्थात् संविधान के भाग 3 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को । स्वीकृतत:, संविधान की नवीं अनुसूची की मद संख्या 125 में 1939 के अधिनियम के अध्याय IV-क, जो 1988 के अधिनियम के अध्याय VI में विद्यमान है, का उल्लेख नहीं है। इसलिए संविधान का अनुच्छेद 31-ख मात्र यह अभिकथित करता है कि 1988 के अधिनियम के अध्याय VI के उपबंधों को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि यह उपबंध संविधान के भाग 3 के अधीन प्रदत्त शक्तियों में से किसी भी शक्ति को न्यून करते हैं या उसका अतिक्रमण करते हैं । तथापि, याची ने 1988 के अधिनियम के अध्याय VI के किसी भी उपबंध को संविधान के भाग 3 का उल्लंघनकारी होने के आधार पर चुनौती नहीं दी है । इसलिए

याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई प्रथम दलील कि अनुच्छेद 31-ख सपठित संविधान की नवीं अनुसूची 1988 के अधिनियम के अध्याय VI को संरक्षण प्रदान करती है, इसलिए मंत्रिमंडल द्वारा लिया गया विनिश्चय 1988 के अधिनियम के अध्याय VI का अतिक्रमण नहीं करता और उनकी यह दलील बिल्कुल भी मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं है ।

9. 1988 के अधिनियम का अध्याय VI, जैसाकि इसके शीर्षक से स्पष्ट होता है, 'राज्य यातायात उपक्रमों से संबंधित विशेष उपबंधों' के लिए विहित करता है । उक्त अध्याय 1988 से विद्यमान है । उक्त अध्याय का निर्वचन करते हुए इस बात का विस्मरण नहीं किया जा सकता कि वर्ष 1950 में संसद् ने राज्य यातायात निगम अधिनियम अधिनियमित किया था । चूंकि वर्ष 1950 में देश को तुरंत ही स्वतंत्रता मिली थी, इसलिए यह आवश्यक था कि यातायात क्षेत्र को लोक उपक्रमों द्वारा चलाया जाए । इसका एक कारण यह भी था कि सुसंगत समय बिंदु पर कोई भी निजी अस्तित्व इतना विशाल नहीं था कि वह देश के बड़े भाग में बसों का प्रचालन कर सकता । इसलिए, यह आवश्यक था कि उक्त अधिनियम के अंतर्गत राज्य यातायात निगम सृजित किए जाएं । इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1988 के अधिनियम के अध्याय VI के अंतर्गत राज्य यातायात निगमों के सृजन, उनको चलाए जाने, उनकी संपन्नता और उनको प्रोन्नत किए जाने पर बल दिया गया । इसी प्रकाश में 1988 के अधिनियम की धारा 98, 99 और 104 विरचित की गई ।

10. वास्तव में यह कहा जाना घिसापिटा है कि किसी अधिनियम के उपबंधों का निर्वचन करते हुए उस अधिनियम के बारे में समग्र दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए : किसी भी अधिनियम को थोड़ा-थोड़ा करके नहीं पढ़ा जा सकता है । इसलिए, 1988 के अधिनियम के अध्याय V और VI के उपबंधों का निर्वचन उस अधिनियम में और उस अध्याय में विद्यमान अन्य उपबंधों के प्रकाश में किया जाना चाहिए ।

11. 1988 के अधिनियम की धारा 98 निम्नलिखित है :-

> "98. **इस अध्याय का अध्याय 5 और अन्य विधियों पर अध्यारोही होना** - इस अध्याय और इसके अधीन बनाए गए नियम

या किए गए आदेश के उपबंध अध्याय 5 में या इस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अथवा किसी ऐसी विधि के आधार पर प्रभावी किसी लिखत में उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे ।"

12. यद्यपि उक्त उपबंध 1988 के अधिनियम का अध्याय VI के उपबंध की सर्वोच्चता के लिए उपबंधित करता है, फिर भी यह सर्वोच्चता मात्र इस सीमा तक सीमित है जब '1988 के अधिनियम के अध्याय VI और V के उपबंधों के मध्य असंगतता' हो । याची का यह पक्षकथन नहीं है कि 1988 के अधिनियम के अध्याय VI और V के उपबंधों के मध्य असंगतता है । इसलिए, याची के विद्वान् काउंसेल का यह दावा गलत है कि 1988 के अधिनियम के अध्याय VI के उपबंधों को अध्याय V के उपबंधों पर पूर्विकता प्रदान की जानी चाहिए । 1988 के अधिनियम की धारा 98 में परिकल्पित स्थिति वर्तमान मामले में उद्भूत नहीं हुई है । इसलिए, यह दलील मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं है ।

13. 1988 के अधिनियम की धारा 99 निम्नलिखित है :-

"99. **राज्य परिवहन उपक्रम की सड़क परिवहन सेवा के संबंध में प्रस्थापना का तैयार किया जाना और प्रकाशन** - (1) जहां किसी राज्य सरकार की यह राय है कि एक दक्ष, यथोचित, मितव्ययी और समुचित रूप से समन्वित सड़क परिवहन सेवा उपलब्ध कराने के प्रयोजन से लोक हित में आवश्यक है कि साधारणत: सड़क परिवहन सेवाएं अथवा उसके किसी क्षेत्र या मार्ग या भाग के संबंध में किसी विशिष्ट प्रकार की ऐसी सेवा राज्य परिवहन उपक्रम द्वारा, चाहे अन्य व्यक्तियों का पूर्णतया या आंशिक रूप से अपवर्जन करके या अन्यथा, चलाई जाए और चालू रखी जाए, वहां राज्य सरकार उन सेवाओं के स्वरूप की, जिनके उपलब्ध कराए जाने की प्रस्थापना है, और उस क्षेत्र या मार्ग की, जिस पर उसे चलाने की प्रस्थापना है, विशिष्टयां और उससे संबंधित अन्य सुसंगत विशिष्टयां देते हुए एक स्कीम के संबंध में प्रस्थापना बना सकेगी और ऐसी बनाई गई प्रस्थापना को राज्य सरकार के राजपत्र में और उस क्षेत्र या मार्ग में, जिसमें ऐसी स्कीम चलाने की

प्रस्थापना है, परिचालित प्रादेशिक भाषा के कम से कम एक समाचारपत्र में, तथा ऐसी अन्य रीति से भी, जो ऐसी प्रस्थापना बनाने वाली राज्य सरकार ठीक समझे, प्रकाशित कराएगी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जब कोई प्रस्थापना उस उपधारा के अधीन प्रकाशित की जाती है, तब, ऐसी प्रस्थापना के प्रकाशन की तारीख से किसी भी व्यक्ति को प्रस्थापना के लंबित रहने के दौरान अस्थायी परमिट के सिवाय कोई परमिट, नहीं दिया जाएगा और ऐसा अस्थायी परमिट दिए जाने की तारीख से केवल एक वर्ष की अवधि तक या धारा 100 के अधीन स्कीम के अंतिम रूप से प्रकाशन की तारीख तक इनमें से जो भी पूर्वतर हो, विधिमान्य होगा ।"

14. 1988 के अधिनियम की धारा 104 निम्नलिखित है :-

"4. **अधिसूचित क्षेत्र या अधिसूचित मार्ग की बाबत परमिट दिए जाने पर निर्बंधन** – जहां किसी अधिसूचित क्षेत्र या अधिसूचित मार्ग की बाबत कोई स्कीम धारा 100 की उपधारा (3) के अधीन प्रकाशित की गई है वहां, यथास्थिति, राज्य परिवहन प्राधिकरण या प्रादेशिक परिवहन प्राधिकरण कोई भी परिमट उस स्कीम के उपबंधों के अनुसार ही देगा, अन्यथा नहीं :

परन्तु जहां अनुमोदित स्कीम के अनुसरण में किसी अधिसूचित क्षेत्र या अधिसूचित मार्ग की बाबत परमिट के लिए कोई आवेदन राज्य परिवहन उपक्रम द्वारा नहीं किया गया है वहां, यथास्थिति, राज्य परिवहन प्राधिकरण या प्रादेशिक परिवहन प्राधिकरण ऐसे अधिसूचित क्षेत्र या अधिसूचित मार्ग की बाबत किसी व्यक्ति को अस्थायी परमिट इस शर्त पर दे सकेगा कि ऐसा परमिट उस क्षेत्र या मार्ग की बाबत राज्य परिवहन उपक्रम को परिमट दिए जाने पर प्रभावी नहीं रहेगा ।"

15. याची के विद्वान् काउंसेल का यह दावा सही है कि 1988 के अधिनियम की धारा 99 राज्य सरकार पर राज्य यातायात निगम के लाभार्थ योजनाएं विरचित किए जाने के लिए कर्तव्य अधिरोपित करती है ।

1988 के अधिनियम की धारा 99 उपबंधित करती है कि यदि एक बार किसी योजना को प्रस्तावित कर दिया जाता है, तो किसी भी व्यक्ति को कोई अनुज्ञा प्रदान नहीं की जाएगी, सिवाय अस्थायी अनुज्ञा के । इसके अतिरिक्त 1988 के अधिनियम की धारा 104 के अनुसार यदि एक बार किसी योजना को 1988 के अधिनियम की धारा 100 की उपधारा (3) के अधीन प्रकाशित कर दिया जाता है, तो राज्य यातायात अधिकरण या क्षेत्रीय यातायात अधिकरण 'अधिसूचित क्षेत्र या अधिसूचित मार्ग' के लिए कोई अनुज्ञा प्रदान नहीं करेगा, सिवाय योजना के उपबंधों के अनुसार ।

16. तथापि, 1988 के अधिनियम की धारा 102 भी इस अधिनियम के अध्याय VI में विद्यमान है । 1988 की अधिनियम की धारा 102 का विश्लेषण और इसके बारे में की गई चर्चा हमारे प्रयोजनार्थ आवश्यक है ।

17. 1988 के अधिनियम की धारा 102 निम्नलिखित है :-

"102. **स्कीम का रद्द या उपांतरित किया जाना** - (1) यदि राज्य सरकार किसी भी समय लोक हित में ऐसा करना आवश्यक समझती है तो वह प्रस्तावित उपांतरण की बाबत -

(i) राज्य परिवहन उपक्रम को ; और

(ii) किसी अन्य व्यक्ति को जिसका राज्य सरकार की राय में प्रस्तावित उपांतरण से प्रभावित होना संभाव्य है,

सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् किसी अनुमोदित स्कीम को उपांतरित कर सकेगी ।

(2) राज्य सरकार उपधारा (1) के अधीन प्रस्तावित किसी उपांतरण को राजपत्र में और उस क्षेत्र में, जिसको ऐसे उपांतरण के अंतर्गत लाने का प्रस्ताव है ; परिचालित प्रादेशिक भाषाओं के एक समाचारपत्र में प्रकाशित करेगी और उसमें यह तारीख होगी, जो राजपत्र में ऐसे प्रकाशन से तीस दिन से कम नहीं होगी और वह समय और स्थान भी होगा जहां इस निमित्त प्राप्त किसी अभ्यावेदन की राज्य सरकार द्वारा सुनवाई की जाएगी ।"

18. उक्त उपबंध के परिशीलन से यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि राज्य सरकार भी 'किसी अनुमोदित योजना को उपांतरित करने के लिए' समान रूप से सशक्त है । उस शक्ति का प्रयोग 'किसी भी समयबिंदु' पर किया जा सकता है, परंतु यह तब जबकि राज्य सरकार इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि किसी योजना की अधिसूचना 'आवश्यक' भी है और 'जनहित' में भी 1988 के अधिनियम की धारा 102(1) और (2) में आगे उस प्रक्रिया विहित की गई है, जिसका अनुसरण किसी अनुमोदित योजना को उपांतरित किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जाता है । उक्त प्रक्रिया के अनुसार इसके पहले कि किसी अनुमोदित योजना को उपांतरित किया जा सके, राज्य यातायात उपक्रम को सूचना दिया जाना आवश्यक होता है और यदि राज्य सरकार के विचार में किसी व्यक्ति के उपांतरण से प्रभावित हो जाने की आशंका है, तो उस प्रस्तावित उपांतरण की सूचना उस व्यक्ति को भी दी जानी चाहिए । इसके अतिरिक्त, प्रस्तावित उपांतरित योजना को शासकीय राजपत्र में और उस क्षेत्र जिसमें प्रस्तावित उपांतरित योजना को प्रभावी किया जाना है, की क्षेत्रीय भाषा में प्रकाशित हो रहे समाचारपत्र में भी प्रकाशित किया जाना आवश्यक होता है । इसके अतिरिक्त इस प्रकार के किसी भी प्रकाशन में वह तारीख समाविष्ट होनी चाहिए, जो शासकीय राजपत्र में प्रकाशन की तारीख से 30 दिनों से कम की नहीं हो सकती और समय और स्थान भी दर्शित किया जाना चाहिए जिस पर राज्य सरकार द्वारा राज्य यातायात निगम को सुनवाई का अवसर दिया जाएगा और/या उस संबद्ध व्यक्ति को भी सूचित किया जाना चाहिए जो प्रस्तावित उपांतरण द्वारा प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो सकता है । इसके अतिरिक्त 1988 के अधिनियम की धारा 102 के अनुसार राज्य सरकार द्वारा विनिश्चय लिया जाना चाहिए, किसी अन्य द्वारा नहीं । सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि किसी योजना को उपांतरित किए जाने के प्रयोजनार्थ लिया गया विनिश्चय सरकार द्वारा केवल इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद लिया जाएगा कि उपांतरण 'आवश्यक' है और 'जनहित' में है ।

19. यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण है कि 1988 की अधिनियम की धारा 102 का खंड (ii) राज्य यातायात

अधिकरण और किसी अन्य व्यक्ति, जो राज्य सरकार की राय में प्रस्तावित उपांतरण द्वारा प्रभावित हो सकता है, को सुने जाने के अवसर के बारे में चर्चा करता है । प्रस्तावित उपांतरण के संबंध में सुने जाने का अवसर मात्र एक खोखली औपचारिकता नहीं है, बल्कि इसका अनुसरण सतर्कतापूर्वक किया जाना चाहिए । शब्द 'किसी अन्य व्यक्ति' में किसी अन्य राज्य का सड़क यातायात, केंद्र सरकार, कोई अन्य निजी बस परिचालक या क्षेत्रीय यातायात निगम कर्मकार या संघ भी सम्मिलित हो सकता है ।

20. क्योंकि, 1988 के अधिनियम के अध्याय VI में धारा 99, 104 और 102 विद्यमान हैं, इसलिए प्रथम दोनों उपबंधों का निर्वचन अंतिम उपबंध के प्रकाश में किया जाना चाहिए । इन तीनों उपबंधों को संयुक्त रूप से पढ़े जाने पर कतिपय प्रमुख लक्षण प्रकट होते हैं :-

(i) 1988 के अधिनियम की धारा 99 राज्य सरकार को राज्य यातायात निगम के पक्ष में किसी योजना को विरचित किए जाने की शक्ति प्रदान करती है ; 1988 के अधिनियम की धारा 99(2) सरकार को किसी अन्य अस्तित्व को स्थायी अनुज्ञा प्रदान किए जाने से वर्जित करती है ;

(ii) 1988 के अधिनियम की धारा 104 पुन: सरकार को राज्य यातायात निगम के अतिरिक्त किसी अन्य अस्तित्व को किसी अधिसूचित मार्ग पर या अधिसूचित क्षेत्र के लिए कोई अनुज्ञा प्रदान करने से प्रतिषिद्ध करती है । फिर भी 1988 के अधिनियम की धारा 102 सरकार को किसी योजना को उपांतरित किए जाने के प्रयोजनार्थ अनुज्ञा प्रदान करती है, यदि ऐसा किया जाना आवश्यक है और जनहित में है । अत:, 1988 के अधिनियम की धारा 102 इसी अधिनियम की धारा 99 और 104 का अपवाद है ।

(iii) किंतु 1988 के अधिनियम की धारा 99 और 104 के अधीन सरकार पर आंशिका रूप से परिसीमा के होते हुए भी 1988 के अधिनियम की धारा 102 के अधीन योजना को उपांतरित करने की शक्ति प्राप्त होती है ।

(iv) राज्य सरकार को किसी योजना को उपांतरित करने की शक्ति प्राप्त होती है, परंतु यह तब जबकि इस प्रकार का कोई भी उपांतरण आवश्यक हो और जनहित में हो और 1988 के अधिनियम की धारा 102 द्वारा विहित प्रक्रिया का अनुसरण शब्दश: किया गया हो । इसलिए, याची के विद्वान् काउंसेल यह दावा करते हुए न्यायानुमत हैं कि राज्य सरकार द्वारा 1988 के अधिनियम की धारा 99 और 104 के प्रकाश में धारा 67 और 102 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का अवलंब नहीं लिया जा सकता ।

21. 1988 के अधिनियम की धारा 104 के संबंध में याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा प्रस्तुत किए गए निर्वचन कि 1988 के अधिनियम की धारा 104 अधिसूचित क्षेत्रों या अधिसूचित मार्गों के संबंध में अनुज्ञा प्रदान किए जाने को निर्बंधित करती है, तद्द्वारा 1988 के अधिनियम की धारा 102 के अधीन योजनाओं को उपांतरित किए जाने की राज्य सरकार की शक्ति को उनके द्वारा आक्षेपित किया जाना स्वीकार नहीं किया जा सकता । सर्वप्रथम, यदि इस प्रकार के किसी निर्वचन को स्वीकार किया जाता है, तो 1988 के अधिनियम की धारा 104 के प्रकाश में धारा 102 निरर्थक हो जाएगी । ऐसा कोई भी निर्वचन जो किसी उपबंध को निरर्थक कर दे, स्पष्टत: अस्वीकार्य है । द्वितीयत:, 1988 के अधिनियम की धारा 104 के अधीन प्रदान की गई अनुज्ञाएं अधिसूचित क्षेत्रों या अधिसूचित मार्गों के संबंध में अनुज्ञाएं प्रदान किए जाने के बाबत हैं । जबकि 1988 के अधिनियम की धारा 102 सपठित धारा 67 के अधीन परिकल्पित योजना का उपांतरण सरकार को अनुज्ञाएं प्रदान किए जाने के संबंध में योजना को उपांतरित किए जाने के प्रयोजनार्थ सशक्त करता है जैसे कि किराए पर दिए जाने वाले वाहनों की अनुज्ञाएं । इसलिए यह दलील स्पष्टत: टिकने योग्य नहीं है ।

22. इसके अतिरिक्त, 1988 के अधिनियम की धारा 102 के उपबंधों का निर्वचन करते हुए नवीनतम संशोधित धारा 67 का अनदेखा नहीं किया जा सकता । वैश्वीकरण के कारण लाए जा रहे परिवर्तनों, लोगों की आवश्यकताओं लोगों की बढ़ती हुई प्रत्याक्षाओं और इस तथ्य

के आधार पर कि अहस्तक्षेपरहित और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के शासन में आ जाने को ध्यान में रखते हुए 'प्रतिस्पर्धा' को हतोत्साहित किए जाने के बजाय अधिक बढ़ावा दिया गया है । 1988 के अधिनियम को यातायात क्षेत्र में प्रगति किए जाने, उसको अधिक प्रतियोगी बनाए जाने, उसको यात्रियों के लिए अधिक सुविधाजनक बनाए जाने, सड़क सुरक्षा को सुनिश्चित करते हुए अधिक भीड़ को रोके जाने के लिए संशोधित किया गया था । इसके अतिरिक्त 1988 के अधिनियम की धारा 67(3) को नवीनतम रूप से तारीख 1 सितंबर, 2019 को पुर:स्थापित किया गया है ।

23. 1988 के अधिनियम की धारा 67 निम्नलिखित है :-

धारा 67. राज्य सरकार की सड़क परिवहन का नियंत्रण करने की शक्ति - (1) राज्य सरकार -

(क) मोटर परिवहन के विकास से जनता, व्यापार और उद्योग को होने वाले फायदे ;

(ख) सड़क और रेल परिवहन में समन्वय करने की वांछनीयता ;

(ग) सड़क प्रणाली का क्षय होने से रोकने की वांछनीयता ; और

(घ) परमिट धारकों के बीच अलाभकर प्रतियोगिता को रोकने की वांछनीयता,

को ध्यान में रखते हुए राज्य परिवहन प्राधिकरण और प्रादेशिक परिवहन प्राधिकरण, दोनों को, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, समय-समय पर निम्नलिखित की बाबत निदेश दे सकेगी -

(i) मंजिली-गाड़ी, ठेका-गाड़ी तथा माल-वाहन के लिए किराए और माल-भाड़े को नियत करना (जिनके अंतर्गत अधिकतम तथा न्यूनतम किराए और माल-भाड़े, नियत करना भी है) ;

(ii) ऐसी शर्त पर, जो ऐसे निदेशों में विनिर्दिष्ट की

जाए, साधारणतः लंबी दूरी वाले माल-यातायात का अथवा विनिर्दिष्ट वर्गों के मालों का माल वाहनों द्वारा प्रवहण किए जाने का प्रतिषेध या निर्बन्धन ;

(iii) कोई अन्य विषय जिसकी बाबत राज्य सरकार को यह प्रतीत हो कि वह साधारणतः मोटर परिवहन का विनियमन करने और विशिष्टत: उसके परिवहन के अन्य साधनों में समन्वय करने तथा लंबी दूरी वाले माल-यातायात के प्रवहण संबंधी किसी करार को, जो केन्द्रीय सरकार या किसी अन्य राज्य सरकार या किसी अन्य देश की सरकार से किया गया हो, प्रभावी करने के लिए आवश्यक या समीचीन है :

परंतु खंड (ii) या खंड (iii) में निर्दिष्ट विषयों की बाबत ऐसी कोई अधिसूचना तब तक नहीं निकाली जाएगी जब तक प्रस्थापित निदेशों का प्रारूप राजपत्र में वह तारीख विनिर्दिष्ट करते हुए प्रकाशित नहीं कर दिया जाता जो ऐसे प्रकाशन के कम से कम एक मास पश्चात् की ऐसी तारीख होगी जिसको या जिसके पश्चात् उस प्रारूप पर विचार किया जाएगा और जब तक किसी आक्षेप या सुझाव पर, जो प्राप्त हो, उन व्यक्तियों के, जिनके हित प्रभावित होते हैं, प्रतिनिधियों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् राज्य परिवहन प्राधिकरण के परामर्श से विचार नहीं कर लिया जाता ।

(2) मंजिली-गाड़ी, ठेका-गाड़ी और माल-वाहन के लिए किराया और माल-भाड़ा नियत करने से संबंधित उपधारा (1) के अधीन किसी निदेश में यह उपबंध किया जा सकेगा कि ऐसे किराए या माल-भाड़े में यात्री और माल पर कर से संबंधित तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन मंजिली-गाड़ी, ठेका-गाड़ी या माल-वाहनों के प्रचालकों को, यथास्थिति, यात्रियों या माल भेजने वालों द्वारा संदेय कर भी सम्मिलित होगा ।

24. 1988 के अधिनियम की धारा 67 और 102 के मात्र परिशीलन से यह स्पष्ट: हो जाता है कि पूर्ववर्ती उपबंध के अधीन सड़क

यातायात को नियंत्रित करने की शक्ति पूर्णतया राज्य सरकार में निहित है । उक्त शक्ति को आवश्यक रूप से 1988 के अधिनियम के अध्याय VI में समाविष्ट धारा 102 के अधीन राज्य सरकार को प्रदान की गई शक्ति के साथ पढ़ा जाना चाहिए । 1988 के अधिनियम की धारा 67 सपठित धारा 102 को संयुक्त रूप से पढ़े जाने पर कतिपय सुसंगत पहलू स्पष्ट रूप से सामने आ जाते हैं :-

(i) राज्य सरकार को सड़क यातायात को नियंत्रित करने की पर्याप्त शक्ति प्राप्त है ; और

(ii) राज्य सरकार को यातायात सेवा प्रदाताओं के मध्य प्रतियोगिता सृजित करने की पर्याप्त शक्ति है । शब्द 'यातायात सेवा प्रदाता' में राज्य यातायात निगम और निजी क्षेत्र के प्रचालक, दोनों सम्मिलित हैं । इस प्रकार की किसी भी प्रतियोगिता को राज्य सरकार द्वारा 1988 के अधिनियम की धारा 67(1) में परिभाषित प्राचलों को ध्यान में रखते हुए सृजित किया जा सकता है, अर्थात् यात्रियों की सुविधा, आर्थिक रूप से प्रतियोगी किराए, अत्यधिक भीड़ का निवारण और सड़क सुरक्षा ।

25. 1988 के अधिनियम की धारा 67 की उपधारा (3) में एक कदम आगे बढ़कर प्रावधान हैं और यह धारा शब्दों 'इस अधिनियम में समाविष्ट किसी बात के होते हुए भी' के साथ सर्वोपरि खंड के साथ आरंभ होती है, तदद्वारा यह धारा विवक्षित करती है कि 1988 के अधिनियम के अध्याय VI में समाविष्ट बाधा का अनदेखा किया जा सकता है, यदि राज्य सरकार 1988 के अधिनियम की धारा 67(3) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का अवलंब ले । उक्त उपबंध के अधीन राज्य सरकार इस अधिनियम के अधीन जारी की गई किसी अनुज्ञा को यात्रियों के यातायात के लिए, यातायात में विकास और कार्यकुशलता को प्रोन्नत किए जाने के लिए, उपधारा (3)(क) से (ङ) में उल्लिखित विभिन्न कारणोंवश, जिनमें 'यातायात के साधनों के मध्य यातायात प्रणाली के एकीकरण और संयोजकता को बढ़ावा देना भी सम्मिलित है', उपांतरित कर सकती है । शब्द 'यातायात के साधन' में न केवल यातायात के

विभिन्न साधन सम्मिलित होंगे बल्कि ऐसे विभिन्न घटक भी सम्मिलित होंगे जो यातायात के साधनों को प्रस्तावित करते हैं ।

26. 1988 के अधिनियम की धारा 102 का निर्वचन आवश्यक रूप से राज्य सरकार को प्रदान की गई व्यापक शक्तियों के प्रकाश में 1988 के अधिनियम की धारा 67 के अधीन सड़क यातायात को नियंत्रित किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जाना चाहिए । धारा 102, 1988 के अधिनियम की धारा 67 के आशय और प्रयोजन को क्रियान्वित किए जाने के प्रयोजनार्थ राज्य सरकार को उपलब्ध एक मात्र साधन है । 1988 के अधिनियम की धारा 102 राज्य सरकार को किसी भी योजना को उपांतरित करने की अनुज्ञा प्रदान करती है, परंतु यह तब जबकि वह उपांतरण आवश्यक और जनहित में विचारित किया जाए ।

27. इसलिए, राज्य सरकार को यह शक्ति प्राप्त नहीं है कि वह 1988 के अधिनियम की धारा 67(1)(घ) के अधीन प्रदत्त शक्तियों का अवलंब लेते हुए धारा 102 के अनुपालन में निजी यातायात प्रचालकों को 5100 अनुज्ञाएं प्रदान किए जाने का निर्णय ले सके ।

28. तारीख 2 नवंबर, 2019 के मत्रिमंडल विनिश्चय के परिशीलन से यह स्पष्टत: प्रकट होता है कि राज्य यातायात प्राधिकरण को '1988 के अधिनियम की धारा 102 के अधीन विहित सम्यक् प्रक्रिया आरंभ किए जाने की' मात्र 'अनुज्ञा' प्रदान की गई है । इसलिए, अनुज्ञा प्रदान किए जाने की योजना को अभी भी रेखांकित किया जाना है और 1988 के अधिनियम की धारा 102 के अधीन अनुध्यात प्रक्रिया को अभी भी आरंभ किया जाना है । निश्चित रूप से, अनुज्ञा केवल धारा 102, सपठित अन्य उपबंधों, जो 1988 के अधिनियम के अध्याय V में विनिर्दिष्ट किराए पर चलाए जाने वाले वाहनों से संबंधित अनुज्ञाएं प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ हैं, के अधीन स्थापित प्रक्रिया का अनुसरण किए जाने के द्वारा प्रदान की जा सकती है । इसलिए, वर्तमान में योजना के उपांतरण के लिए प्रक्रिया को आरंभ किए जाने के प्रयोजनार्थ मात्र 'अनुज्ञा' प्रदान की गई है और अन्य उपबंध जैसे कि धारा 102 और 72 का अभी भी क्रियान्वयन में आना बाकी है । इसलिए, याची के

विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील कि मंत्रिमंडल द्वारा निजी यातायात प्रचालकों को किराए पर चलाए जाने वाले वाहनों की 5100 अनुज्ञाएं प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ अंतिम विनिश्चय लिया जा चुका है, वाली दलील अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से मेल नहीं खाती । यह पूर्णतया भ्रामक दलील है और अस्वीकार्य है ।

29. याची के विद्वान् काउंसेल ने दृढ़तापूर्वक दलील दी कि चूंकि मंत्रिमंडल ने कर्मकारों द्वारा की गई हड़ताल के दौरान निर्णय ले लिया है, अतः उनके द्वारा लिया गया निर्णय दूषित है । तथापि, 1988 के अधिनियम की धारा 102 में राज्य सरकार 'किसी भी समय बिंदु पर किसी भी अनुमोदित योजना को उपांतरित कर सकती है' शब्दों का प्रयोग किया गया है । अतः, उक्त उपबंध राज्य सरकार को उस अवधि के दौरान ऐसा कोई विनिश्चय लेने से वर्जित नहीं करते, जब कर्मकार हड़ताल पर हैं । इसके अतिरिक्त उक्त उपबंध हड़ताल की अवधि के दौरान भी राज्य सरकार को 1988 के अधिनियम की धारा 102 में समाविष्ट प्रक्रिया को आरंभ करने से वर्जित नहीं करते । इसके अतिरिक्त यह विनिश्चय उस समय लिया गया है जब संपूर्ण बस यातायात क्षेत्र एक पूर्णरूपेण ठहराव की स्थिति में आ गया है । उक्त विनिश्चय उस समय लिया गया है जब संपूर्ण राज्य में लोग बस यातायात की अनुपलब्धता के कारण अत्यधिक कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं । अतः, यह विनिश्चय वृहत्तर जनता की स्थिति को ध्यान में रखते हुए लिया गया है । इसलिए विद्वान् अधिवक्ता यह दावा करने में पूर्णतया न्यायानुमत हैं कि विनिश्चय जनहित में है । इसलिए, यह दलील कि मंत्रिमंडल द्वारा लिया गया विनिश्चय दूषित है, अस्वीकार्य है ।

30. याची के विद्वान् काउंसेल ने कर्मकारों की चिंता की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया कि इस बात की पूर्ण संभाव्यता है कि तारीख 2 नवंबर, 2019 के विनिश्चय का सहारा लेते हुए सरकार द्वारा निगम का अस्तित्व समाप्त कर दिया जाएगा । तथापि, उक्त चिंता पूर्णतया गलत है । निश्चित रूप से 1988 के अधिनियम की धारा 102

सपठित धारा 67 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का अवलंब लेते हुए सरकार द्वारा अध्याय V और VI के उपबंधों के मध्य निश्चित रूप से संतुलन कायम किया जाना चाहिए ।

31. राज्य सरकार इस तथ्य का अनदेखा नहीं कर सकती कि 1988 के अधिनियम की धारा 102 राज्य सरकार को योजना के उपांतरण की अनुज्ञा प्रदान करती है, लेकिन यदि और केवल यदि वह उपांतरण 'आवश्यक' और 'जनहित' में हो । 'जनहित' शब्द 'वृहत्तर जनता के हित' तक सीमित है । किंतु इसकी परिधि के भीतर निगम में कार्यरत 'कर्मकारों का हित' भी सम्मिलित होना चाहिए ।

32. पुन:, क्योंकि यह धारा यह अपेक्षा भी करती है कि राज्य यातायात उपक्रम को सूचना जारी की जाए, अत: निश्चित रूप से निगम के कर्मकारों के हितों को ध्यान में रखा जाना होगा । कुछ भी हो, संविधान के अनुच्छेद 39(ख), (ग) और (ङ) के प्रकाश में कर्मकारों के हित और कल्याण का अनदेखा नहीं किया जा सकता ।

33. इसके अतिरिक्त, शब्द 'निगम' का निर्वचन कर्मकार के हितों को सम्मिलित करते हुए व्यापक भाव में किया जाना चाहिए । इसलिए, 1988 के अधिनियम की धारा 102 के अधीन विहित प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए न केवल प्रबंधतंत्र के हित, बल्कि कर्मकार के हितों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

34. इसके अतिरिक्त, मात्र इस कारणवश कि राज्य सरकार को यातायात क्षेत्र में निजी यातायात प्रचालकों को आमंत्रित करने की शक्ति प्राप्त है, उक्त शक्ति का प्रयोग निगम की आत्यंतिक विद्यमान्यता को समाप्त किए जाने की सीमा तक नहीं किया जा सकता । 1988 के अधिनियम के अध्याय VI के अधीन राज्य यातायात निगम को दी गई पूर्विकता, जो एक तरफ तो संविधान के अनुच्छेद 31-ख सपठित नवीं अनुसूची के अधीन संरक्षित है और दूसरी तरफ 1988 के अधिनियम की धारा 67 सपठित धारा 102 के अधीन राज्य को निजी क्षेत्र के यातायात प्रचालकों को आमंत्रित किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रदत्त शक्ति के अधीन संरक्षित है, के मध्य निश्चित रूप से संतुलन स्थापित किया जाना

चाहिए । इसलिए, राज्य सरकार सुसंगत विधियों को विरचित किए जाने की योजना का अनदेखा नहीं कर सकती ।

35. पुन:, 1988 के अधिनियम की धारा 67(1)(घ) 'प्रतियोगिता' के बारे में चर्चा करती है । प्रतियोगिता केवल तभी संभव है, यदि सभी पक्षों को बराबरी के अवसर प्रदान किए जाएं और सभी पक्षों को प्रतियोगिता की अनुज्ञा प्रदान की जाए । अत:, 'प्रतियोगिता' शब्द राज्य सरकार को यातायात के क्षेत्र में कार्य करने वाले केवल निजी यातायात प्रचालकों को अनुज्ञा प्रदान नहीं करती । 1988 के अधिनियम की धारा 67(1)(घ) राज्य यातायात निगम को सक्रिय, प्रगतिशील और संपन्न बनाए रखे जाने की आवश्यकता की तरफ संकेत करती है । इसलिए, राज्य सरकार यह दावा करने में न्यायानुमत नहीं होगी कि उसको 1988 के अधिनियम की धारा 67(1) सपठित धारा 102 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का अवलंब लेते हुए निगम को समाप्त कर देने की अनिर्बंधित शक्ति प्राप्त है । इस प्रकार की शक्ति की न तो कल्पना की गई थी और न ही 1988 के अधिनियम के अंतर्गत इसे प्रदान किया गया है ।

36. इसके अतिरिक्त, 1988 के अधिनियम को आवश्यक रूप से 1950 के सड़क यातायात निगम के उपबंधों के साथ पढ़ा जाना चाहिए । इसलिए, सर्वोत्तम यही होगा कि यह अभिनिर्धारित किया जाए कि राज्य सरकार केवल 50 प्रतिशत की अधिकतम सीमा तक निजी क्षेत्र के प्रचालकों को अनुज्ञा प्रदान करने में न्यायसंगत होगी, किंतु उसके परे नहीं । इसलिए, राज्य सरकार 1988 के अधिनियम की धारा 67 और 102 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए अनिर्बंधित शक्तियों का प्रयोग नहीं करती । वास्तव में विधित: यह अपेक्षित है कि विभिन्न पणधरकों के परस्पर विरोधी हितों के मध्य संतुलन स्थापित किए जाने और लोक यातायात क्षेत्र में निजी यातायात प्रचालकों को प्रवेश दिए जाने के प्रयोजनार्थ अत्यधिक विचार-विमर्श के पश्चात् निर्णय लिया जाए ।

37. 1988 के अधिनियम की धारा 102 के अनुसार किसी योजना को उपांतरित किए जाने का विनिश्चय, आवश्यकत: राज्य सरकार द्वारा लिया जाना चाहिए । राज्य सरकार का प्रतिनिधित्व प्रमुख सचिव (यातायात) द्वारा किया जाता है । तथापि, मंत्रिमंत्रल का विनिश्चय,

जैसाकि उल्लेख ऊपर किया गया है, अपने सारगर्भित स्वरूप में राज्य यातायात प्राधिकरण को अनुज्ञा प्रदान करती है । किंतु राज्य यातायात प्राधिकरण को 1988 के अधिनियम की धारा 68 के अधीन गठित किया गया है । राज्य यातायात प्राधिकरण प्राथमिकत: अर्धन्यायिक प्राधिकरण है, जिसको 1988 के अधिनियम की धारा 68(3) के अनुसार विवादों का निपटारा करने और साथ ही क्षेत्रीय यातायात प्राधिकरण के क्रियाकलापों और नीतियों के मध्य समन्वय स्थापित करने और उनको विनियमित करने की शक्ति प्राप्त है । इसलिए राज्य यातायात प्राधिकरण राज्य सरकार को व्यक्ति के रूप में मान्यता प्रदान नहीं करता । हमारे द्वारा विद्वान् अधिवक्ता का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया गया था कि प्रमुख सचिव (यातायात) के बजाय 1988 के अधिनियम की धारा 68 में उल्लिखित अर्धन्यायिक प्राधिकरण को अनुज्ञा प्रदान की गई है, इसलिए विद्वान् महाधिवक्ता ने इस न्यायालय के समक्ष वचन दिया कि तेलंगाना सरकार के प्रमुख सचिव (यातायात) द्वारा वास्तव में 1988 के अधिनियम की धारा 102 के अधीन उल्लिखित प्रक्रिया का पालन किया जाएगा और किसी अन्य के द्वारा नहीं ।

38. यदि विद्वान् महाधिवक्ता द्वारा यह वचन दे दिया जाता है और यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि राज्य सरकार को 1988 के अधिनियम की धारा 102 के अधीन उपबंधित प्रक्रिया को आरंभ करने का विनिश्चय करने की पर्याप्त शक्ति प्राप्त है तो यह न्यायालय मंत्रिमंडल द्वारा तारीख 2 नवंबर, 2019 को लिए गए आक्षेपित विनिश्चय में किसी भी प्रकार की कोई त्रुटि नहीं पाता ।

39. ऊपर उल्लिखित कारणोंवश यह न्यायालय वर्तमान रिट याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाता, अत: यह याचिका एतद्द्वारा खारिज की जाती है । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जाता । परिणामत: प्रकीर्ण याचिकाएं, यदि कोई लंबित हों, भी खारिज की जाती हैं ।

याचिका खारिज की गई ।

शु.

संदीप सिंह सागवान

बनाम

रितु उर्फ रीधिमा

(2018 की प्रकीर्ण अपील संख्या 5824)

तारीख 16 दिसंबर, 2019

न्यायमूर्ति राजन गुप्ता और न्यायमूर्ति करमजीत सिंह

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8) – धारा 25 [हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 13] – पिता द्वारा अवयस्क बच्चे की अभिरक्षा का दावा – बच्चे द्वारा अपनी माता के साथ रहने की इच्छा व्यक्त किया जाना – यदि माता सुशिक्षित और कार्यरत है और बच्चे को उचित शिक्षा उपलब्ध कराने में समर्थ है, तो पिता संरक्षण प्रदान किए जाने का हकदार नहीं है – निचले न्यायालय द्वारा बच्चे की अभिरक्षा प्राप्त करने के पिता के अनुरोध को नामंजूर किया जाना न्यायत: सही था ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि पक्षों का विवाह तारीख 24 मार्च, 2010 को अम्बाला शहर के शगुन पैलेस में हिंदू रीति रिवाजों और संस्कारों के अनुसार संपन्न हुआ था । विवाह के पश्चात् दोनों पक्ष अपने वैवाहिक घर में एक साथ रहने लगे और इस विवाह बंधन से तारीख 5 अक्तूबर, 2011 को एक बालिका का जन्म हुआ जिसका नाम 'भूमिका' रखा गया । चूंकि विवाह के दिन से प्रत्यर्थी के कार्य और आचरण अपीलार्थी के प्रति अत्यधिक क्रूरता भरे थे और उसके माता पिता भी प्रत्यर्थी को परेशान और अपमानित किया करते थे, इसलिए प्रत्यर्थी ने कुछ समय पश्चात् अपना वैवाहिक घर अपीलार्थी या उसके परिजनों की सहमति और जानकारी के बिना छोड़ दिया और अपने माता-पिता के घर रहने लगी । अपीलार्थी सदैव अपनी अवयस्क पुत्री के कल्याण और शिक्षा के लिए चिंतित रहता था । वर्ष 2014 के माह अप्रैल में अपीलार्थी

ने अपनी पुत्री का प्रवेश अम्बाला कैंट के ननहेरा स्थित फादर एंजल कॉन्वेंट स्कूल में करा दिया । इसके बाद भी प्रत्यर्थी छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा किया करती थी । पुलिस द्वारा दबाव डाले जाने पर प्रत्यर्थी द्वारा अपनी अवयस्क पुत्री की अभिरक्षा पुन: ले ली गई, जिसके परिणामस्वरूप अवयस्क पुत्री लगभग दो माह तक विद्यालय नहीं जा सकी । प्रत्यर्थी के माता-पिता ने तारीख 2 नवंबर, 2015 को अवयस्क पुत्री को अपीलार्थी को दे दिया और तत्पश्चात् पुत्री पुन: विद्यालय जाने लगी । तथापि, प्रत्यर्थी तारीख 11 मार्च, 2015 को अवयस्क पुत्री को विद्यालय से अपीलार्थी की सहमति और आज्ञा के बिना अवैध रूप से ले गई । इस मामले की सूचना पुलिस को दी गई, किंतु पुलिस ने कोई कार्यवाही नहीं की । अंतत:, अपीलार्थी द्वारा अधिनियम की धारा 25 के अधीन याचिका फाइल की गई, जिसके अंतर्गत उसको अवयस्क पुत्री की अभिरक्षा दिए जाने की ईप्सा की गई । प्रत्यर्थी ने याचिका का प्रतिवाद किया और अपना लिखित कथन फाइल किया, जिसमें उसने इस बात से इनकार किया कि वह अपीलार्थी के साथ दुर्व्यवहार करती थी । तथापि, उसने इस बात को स्वीकार किया कि पक्षों के मध्य विवाह तारीख 24 मार्च, 2010 को संपन्न हुआ था और इस विवाह बंधन से तारीख 5 अक्तूबर, 2011 को एक पुत्री का जन्म हुआ, जिसका नाम 'भूमिका' है । उसने यह अभिवाक् भी किया कि उसको अपनी अवयस्क पुत्री के साथ अपने वैवाहिक घर से वर्ष 2015 के माह फरवरी में निकाल दिया गया था और सुलह के सभी प्रयास भी विफल रहे । अम्बाला के विद्वान् जिला न्यायाधीश (परिवार न्यायालय) ने दोनों पक्षों को सुनने के पश्चात् याचिका को खारिज कर दिया और अपीलार्थी को अवयस्क बालिका से मिलते रहने का अधिकार प्रदान कर दिया, जिसके अनुसार वह अवयस्क बालिका से प्रत्येक माह के द्वितीय और चतुर्थ रविवार को पूर्वाह्न 10.00 बजे से अपराह्न 4.00 बजे के मध्य मिल सकता है । अपीलार्थी ने इस निर्णय से व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस तथ्य के संबंध में कोई विवाद नहीं है कि पक्षों का

विवाह तारीख 24 मार्च, 2010 को संपन्न हुआ था और उनके विवाह बंधन से तारीख 5 अक्तूबर, 2011 को एक बालिका का जन्म हुआ जिसका नाम 'भूमिका' रखा गया । प्रत्यर्थी के अनुसार दोनों पक्ष वर्ष 2015 के फरवरी माह से पृथक् हो गए और तब से अवयस्क बालिका अपनी माता के साथ रह रही है । ऐसे मामलों में बालिका का कल्याण पर विचार किया जाना सर्वोपरि है । अवयस्क की अभिरक्षा प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ नैसर्गिक और विधिक संरक्षक का अधिकार एकमात्र ऐसा प्रश्न नहीं है जिस पर विचार किया जाना है । वर्तमान मामले में बालिका अपनी माता के साथ भावनात्मक रूप से जुड़ी हुई है । इस बालिका की आयु वर्तमान में 8 वर्ष से अधिक है । आक्षेपित निर्णय में की गई मताभिव्यक्तियों के अनुसार बालिका को तारीख 21 मार्च, 2018 को निचले विद्वान् न्यायालय के समक्ष बुलाया गया था किंतु वह अपने पिता के साथ जाना नहीं चाहती । उसके संरक्षण के मामले पर विचार करते हुए उसकी आयु और इच्छा पर भी इस न्यायालय को विचार करना होगा । वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी सुशिक्षित है और उसके काउंसेल द्वारा इस न्यायालय के संज्ञान में लाया गया है कि वह वर्तमान में चंडीगढ़ पटियाला मार्ग पर स्थित चिटकारा विश्वविद्यालय में कार्यरत है । इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्यर्थी की मां अपनी अवयस्क बालिका को उचित शिक्षा उपलब्ध कराने में समर्थ है । माता अपनी पुत्री (अवयस्क) की देखभाल प्यार और अनुराग के साथ कर रही है । अत: इस प्रक्रम पर यह उचित नहीं होगा कि अवयस्क बालिका की अभिरक्षा अपीलार्थी को सौंपे जाने के द्वारा उसकी जड़ों को उखाड़ दिया जाए । तथापि, तत्समय हमारा यह विचार भी है कि बालिका को अपने पिता के संपर्क में भी रहना चाहिए । इसलिए निचले विद्वान् न्यायालय ने अपीलार्थी को अवयस्क बालिका की अभिरक्षा प्राप्त करने के अनुरोध को अस्वीकार करके और उसको बालिका से मिलते रहने का अधिकार प्रदान करके न्यायत: कार्य किया । (पैरा 14 और 15)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की प्रकीर्ण अपील संख्या 5824.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

याची की ओर से श्री जे. एस. जैदका

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री अनील मेहता और अरुण शर्मा

आदेश

प्रस्तुत अपील अपीलार्थी संदीप सिंह सागवान द्वारा अम्बाला के विद्वान् जिला न्यायाधीश (परिवार न्यायालय) द्वारा तारीख 28 मार्च, 2018 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा 1890 के संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 25 सपठित 1956 के हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 13 के अधीन उसके द्वारा फाइल की गई याचिका, जिसके अंतर्गत उसने अपनी अवयस्क पुत्री का संरक्षण प्राप्त करने की ईप्सा की थी, को खारिज कर दिया गया है ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य यह है कि पक्षों के मध्य विवाह तारीख 24 मार्च, 2010 को अम्बाला शहर के शगुन पैलेस में हिंदू रीति रिवाजों और संस्कारों के अनुसार संपन्न हुआ था । विवाह के पश्चात् दोनों पक्ष अपने वैवाहिक घर में एक साथ रहने लगी और इस विवाह बंधन से तारीख 5 अक्तूबर, 2011 को एक बालिका का जन्म हुआ, जिसका नाम 'भूमिका' रखा गया । चूंकि विवाह के दिन से प्रत्यर्थी का अपीलार्थी के प्रति कार्य और आचरण अत्यधिक क्रूरता भरे थे और उसके माता-पिता अपीलार्थी को परेशान और अपमानित किया करते थे, अत: प्रत्यर्थी ने कुछ समय पश्चात् अपना वैवाहिक घर अपीलार्थी या उसके परिजनों की सहमति और जानकारी के बिना छोड़ दिया और अपने माता-पिता के घर में रहने लगी । अपीलार्थी सदैव अपनी अवयस्क पुत्री के कल्याण और शिक्षा के लिए चिंतित रहता था । वर्ष 2014 के माह अप्रैल में अपीलार्थी ने अपनी पुत्री का प्रवेश अम्बाला कैंट के ननहेरा स्थित फादर एंजल कॉन्वेंट स्कूल में करा दिया । इसके बाद भी प्रत्यर्थी छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा किया करती थी । पुलिस द्वारा दबाव डाले जाने पर प्रत्यर्थी द्वारा अपनी अवयस्क पुत्री की अभिरक्षा पुन: ले ली गई, जिसके परिणामस्वरूप अवयस्क पुत्री लगभग दो माह तक

विद्यालय नहीं जा सकी । प्रत्यर्थी के माता-पिता ने तारीख 2 नवंबर, 2015 को अवयस्क पुत्री को अपीलार्थी को दे दिया । तत्पश्चात् पुत्री पुनः विद्यालय जाने लगी । तथापि, प्रत्यर्थी तारीख 11 मार्च, 2015 को अवयस्क पुत्री को विद्यालय से अपीलार्थी की सहमति और आज्ञा के बिना अवैध रूप से ले गई । इस मामले की सूचना पुलिस को दी गई, किंतु पुलिस ने कोई कार्यवाही नहीं की । अंततः, अपीलार्थी द्वारा अधिनियम की धारा 25 के अधीन याचिका फाइल की गई, जिसके अंतर्गत उसने अवयस्क पुत्री की अभिरक्षा की ईप्सा की ।

3. प्रत्यर्थी ने याचिका का प्रतिवाद किया और अपना लिखित कथन फाइल किया जिसमें उसने इस बात से इनकार किया कि वह अपीलार्थी के साथ दुर्व्यवहार करती थी । तथापि, उसने इस बात को स्वीकार किया कि पक्षों के मध्य विवाह तारीख 24 मार्च, 2010 को संपन्न हुआ था और इस विवाह बंधन से तारीख 5 अक्तूबर, 2011 को एक पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम 'भूमिका' है । उसने यह अभिवाक् भी किया कि उसको अपनी अवयस्क पुत्री के साथ अपने वैवाहिक घर से वर्ष 2015 के माह फरवरी में निकाल दिया गया था और सुलह के सभी प्रयास भी विफल रहे ।

4. विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पक्षों के अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए :–

> "1. क्या याची याचिका में लिए गए आधारों पर अवयस्क पुत्री भूमिका का संरक्षण प्राप्त करने का हकदार है ? यदि हां तो इसके प्रभाव ।
>
> 2. क्या याचिका पोषणीय नहीं है ? यदि हां तो इसके प्रभाव ।
>
> 3. अन्य कोई अनुतोष ।"

5. अपीलार्थी साक्षी कठघरे में स्वयं याची साक्षी-1 के रूप में उपस्थित हुआ और उसने याचिका की अंतर्वस्तुओं को अपने शपथपत्र (प्रदर्श याची साक्षी-1/ए) में दोहराया । उसने दस्तावेज भी प्रस्तुत किए जिन्हें 'ए' से 'के' के रूप में चिह्नित किया गया ।

6. इसके विपरीत प्रत्यर्थी स्वयमेव साक्षी कठघरे में प्रत्यर्थी साक्षी-1 के रूप में उपस्थित हुई । उसने भी दस्तावेज प्रस्तुत किए जिन्हें प्रत्यर्थी साक्षी-1/1 से प्रत्यर्थी साक्षी 1/4 के रूप में चिह्नित किया गया । इन दस्तावेजों के खंडन में अपीलार्थी ने पुन: दस्तावेज प्रस्तुत किए जिन्हें 'एल' से 'एस' के रूप में चिह्नित किया गया ।

7. पक्षों के विद्वान् काउंसेल को सुनने के पश्चात् अम्बाला के विद्वान् जिला न्यायाधीश (परिवार न्यायालय) के न्यायालय में याचिका को खारिज कर दिया गया । तथापि, अपीलार्थी को अवयस्क बालिका से मिलने के अधिकार प्रदान किए गए जिसके अनुसार अवयस्क बालिका को माह के प्रत्येक दूसरे और अंतिम रविवार को पूर्वाह्न 10.00 बजे से अपराह्न 4.00 बजे तक अपने पिता के अंतरिम संरक्षण में रहना था ।

8. अपीलार्थी द्वारा तारीख 28 मार्च, 2018 के उक्त निर्णय से व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की गई है ।

9. हमने पक्षों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेख का सतर्कतापूर्वक परिशीलन किया ।

10. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि प्रत्यर्थी बेरोजगार है और उसके पास अवयस्क बालिका, जिसकी वर्तमान में आयु आठ वर्ष है, को उचित रीति में शिक्षा प्रदान करने के संसाधन नहीं हैं । उन्होंने आगे दलील दी कि बालिका का भविष्य उसकी माता, जिसने अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 498क के अधीन असत्य शिकायतें दर्ज कराई, के हाथों में सुरक्षित और सुनिश्चित नहीं है । उन्होंने आगे दलील दी कि अपीलार्थी पिता और नैसर्गिक संरक्षक होने के नाते अवयस्क बालिका का संरक्षण प्राप्त करने का हकदार है ।

11. उन्होंने आगे निवेदन किया कि प्रत्यर्थी ने न्यायालय से तात्विक तथ्यों को छुपाया और न्यायालय को गुमराह करने का प्रयास किया । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने आगे दलील दी कि इस प्रकार के मामलों पर विचार करते हुए, जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचारणा को ध्यान में रखी जानी है, वह बालिका का कल्याण और हित है । हमारे

समक्ष उपस्थित मामले में विद्वान् निचले न्यायालय ने इस तथ्य का अनदेखा किया कि अपीलार्थी के पास अवयस्क बालिका को उत्तम शिक्षा और जीवन की अन्य सुविधाएं उपलब्ध कराने के समस्त संसाधन उपलब्ध हैं । उन्होंने आगे अभिवाक् किया कि विद्वान् निचले न्यायालय का निर्णय पलटे जाने योग्य है ।

12. इसके विपरीत प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि अपीलार्थी ने सदैव अपनी पत्नी और अवयस्क पुत्री, जो वर्तमान में सुख-सुविधापूर्वक प्रत्यर्थी के साथ रह रही है, जो उसको उचित शिक्षा प्रदान करा रही है, का अनदेखा किया । उन्होंने आगे निवेदन किया कि प्रत्यर्थी एम.टेक है और वर्तमान में चंडीगढ़ पटियाला मार्ग पर स्थित चिटकारा विश्वविद्यालय में कार्यरत है । उन्होंने आगे दलील दी कि जब अवयस्क बालिका को विद्वान् निचले न्यायालय के समक्ष बुलाया गया था, तो उसने अपने पिता के साथ जाने से इनकार कर दिया था और तद्नुसार, उक्त न्यायालय ने तारीख 28 मार्च, 2018 को निर्णय पारित किया था ।

13. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने आगे दलील दी कि यदि अवयस्क बालिका का संरक्षण अपीलार्थी को सौंप दिया जाता है, तो इससे निश्चित रूप से बालिका पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ेगा । इसलिए, परिवार न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई याचिका को न्यायत: खारिज किया । हमने पक्षों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा किए गए निवेदनों पर विचार किया और अभिलेख का परिशीलन किया ।

14. इस तथ्य के संबंध में कोई विवाद नहीं है कि पक्षों का विवाह तारीख 24 मार्च, 2010 को संपन्न हुआ था और उनके मध्य विवाह बंधन से एक बालिका का जन्म तारीख 5 अक्तूबर, 2011 को हुआ जिसका नाम 'भूमिका' रखा गया । प्रत्यर्थी के अनुसार दोनों पक्ष वर्ष 2015 के फरवरी माह से पृथक् हो गए और तब से अवयस्क बालिका अपनी माता के साथ रह रही है । ऐसे मामलों में बालिका का कल्याण पर विचार किया जाना सर्वोपरि है । अवयस्क की अभिरक्षा प्राप्त करने के प्रयोजनार्थ नैसर्गिक और विधिक संरक्षक का अधिकार एकमात्र ऐसा

प्रश्न नहीं है जिस पर विचार किया जाना है । वर्तमान मामले में बालिका अपनी माता के साथ भावनात्मक रूप से जुड़ी हुई है । इस बालिका की आयु वर्तमान में 8 वर्ष से अधिक है । आक्षेपित निर्णय में की गई मताभिव्यक्तियों के अनुसार बालिका को तारीख 21 मार्च, 2018 को निचले विद्वान् न्यायालय के समक्ष बुलाया गया था किंतु वह अपने पिता के साथ जाना नहीं चाहती थी । इस न्यायालय को उसके संरक्षण के मामले पर विचार करते हुए उसकी आयु और इच्छा पर भी विचार करना होगा ।

15. वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी सुशिक्षित है और उसके काउंसेल द्वारा इस न्यायालय के संज्ञान में लाया गया है कि वह वर्तमान में चंडीगढ़ पटियाला मार्ग पर स्थित चिटकारा विश्वविद्यालय में कार्यरत है । इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्यर्थी की मां अपने अवयस्क बालिका को उचित शिक्षा उपलब्ध कराने में समर्थ है । माता अपनी पुत्री (अवयस्क) की देखभाल प्यार और अनुराग के साथ कर रही है । अत: इस प्रक्रम पर यह उचित नहीं होगा कि अवयस्क बालिका की अभिरक्षा अपीलार्थी को सौंपे जाने के द्वारा उसकी जड़ों को उखाड़ दिया जाए । तथापि, तत्समय हमारा यह विचार भी है कि बालिका को अपने पिता के संपर्क में भी रहना चाहिए । इसलिए निचले विद्वान् न्यायालय ने अपीलार्थी को अवयस्क बालिका की अभिरक्षा प्राप्त करने के अनुरोध को अस्वीकार करके और उसको बालिका से मिलते रहने का अधिकार प्रदान करके न्यायत: कार्य किया ।

16. परिणामत: यह अपील विफल होती है और एतद्द्वारा खारिज की जाती है । दोनों पक्ष अपनी-अपनी लागत स्वयं वहन करेंगे ।

अपील खारिज की गई ।

शु.

अनिल कुमार

बनाम

प्रकाश विज

(2019 की सिविल प्रकीर्ण याचिका संख्या 190)

तारीख 4 जुलाई, 2019

न्यायमूर्ति अजय मोहन गोयल

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 26, नियम 9 – स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति के लिए आवेदन – यह अभिनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ कि क्या प्रतिवादियों द्वारा वादग्रस्त भूमि पर अतिक्रमण किया गया, वादग्रस्त भूमि के सीमांकन के लिए स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति की ईप्सा किया जाना – वादी द्वारा अभिलेख पर यह दर्शित न किया जाना कि उसने विवादित भूमि के सीमांकन के लिए राजस्व प्राधिकारियों की शरण ली और राजस्व प्राधिकारियों ने कोई कार्रवाई नहीं की – वादी द्वारा अतिक्रमण को साबित भी नहीं किया जाना – न्यायालय मात्र साक्ष्य एकत्रित करने के प्रयोजनार्थ स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति नहीं कर सकता – स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति के लिए प्रस्तुत आवदेन अस्वीकार किया जाना उचित है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य ये हैं कि याची ने निषेधात्मक स्थाई व्यादेश के लिए वाद यह प्रार्थना करते हुए फाइल किया कि प्रतिवादियों को वादग्रस्त भूमि के कब्जे में मध्यक्षेप करने से निषिद्ध किया जाए और उनको वादग्रस्त भूमि पर किए गए अतिक्रमण को हटाने के लिए निर्देशित करते हुए आज्ञापक व्यादेश की डिक्री पारित की जाए । अभिलेखों के आधार पर दर्शित होता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 9 के अधीन याची द्वारा वादग्रस्त भूमि के सीमांकन के लिए आवेदन अक्तूबर, 2015 में, जब वादी ने अपने साक्ष्य का

नेतृत्व भी नहीं किया था, फाइल किया गया था । याची के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि विचारण न्यायालय द्वारा इस आवेदन को यह मताभिव्यक्ति करते हुए लंबित रखा गया कि इस आवेदन में की गई प्रार्थना पर समुचित प्रक्रम पर विचार किया जाएगा, चूंकि यह आवेदन वर्तमान प्रक्रम पर समयपूर्व है । याची ने इस याचिका द्वारा शिमला के विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), न्यायालय संख्या 3 द्वारा 2018 के सिविल प्रकीर्ण आवेदन संख्या 9003752 में तारीख 18 मार्च, 2019 को पारित उस आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा याची द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 9 के अधीन वादग्रस्त भूमि का सीमांकन किए जाने और इस बात को अभिनिश्चित किए जाने कि क्या वादग्रस्त भूमि पर प्रतिवादियों द्वारा अतिक्रमण किया गया है या नहीं, के प्रयोजनार्थ स्थानीय आयुक्त नियुक्त किए जाने के लिए फाइल किए गए आवेदन को अस्वीकृत कर दिया गया है । प्रकीर्ण अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – जैसाकि मैंने पहले ही मताभिव्यक्त की है, याची का यह अभिकथन है कि प्रत्यर्थियों ने सरकारी भूमि पर अतिक्रमण कर लिया है, अत: यह याचियों का कर्तव्य है कि वे इस तथ्य को साबित करें और किसी भी पक्ष की तरफ से साक्ष्य एकत्र किए जाने के प्रयोजनार्थ स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति न्यायालय द्वारा नहीं की जा सकती । अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है कि याची ने विवाद की विषयवस्तु, जो वादग्रस्त भूमि है, के सीमांकन के लिए राजस्व प्राधिकारियों की शरण ली थी और राजस्व प्राधिकारियों ने भूमि के सीमांकन के लिए याची के अनुरोध पर विचार नहीं किया । इन परिस्थितियों में यह न्यायालय विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश, जिसे इस याचिका में आक्षेपित किया गया और जिसके द्वारा स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति के लिए याची द्वारा फाइल किया गया आवेदन खारिज कर दिया गया, में कोई अवैधता नहीं पाती । यह न्यायालय विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा

निकाले गए निष्कर्षों से सहमत है कि स्थानीय आयुक्त कब्जे के विनिर्धारण के लिए नियुक्त नहीं किया जा सकता और न ही न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह किसी भी पक्ष की ओर से साक्ष्य एकत्रित करे । मैंने इस न्यायालय की माननीय समकक्ष न्यायपीठ द्वारा पारित निर्णय का सतर्कतापूर्वक परिशीलन किया । मेरी सुविचारित राय में इस न्यायालय की माननीय समकक्ष न्यायपीठ द्वारा पारित निर्णय से याची को कोई सहायता नहीं मिलती क्योंकि यह निर्णय उस मामले के तथ्यों के आधार पर पारित किया गया था । वर्तमान मामले में तथ्यात्मक स्थिति सर्वथा भिन्न है । न तो याची ने यह प्रदर्शित करने के प्रयोजनार्थ अभिलेख पर कुछ भी प्रस्तुत किया है कि उसने वादग्रस्त भूमि के सीमांकन के लिए राजस्व प्राधिकारियों की शरण में जाने के द्वारा तत्पर्तापूर्वक कार्रवाई की और राजस्व प्राधिकारियों द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई और पुन: अभिलेख के आधार पर यह ज्ञात होता है कि याची और प्रत्यर्थियों के मध्य विवाद सीमांकन विवाद नहीं क्योंकि याची और प्रत्यर्थियों की संपत्तियों के मध्य किसी तृतीय पक्ष की भूमि स्थित है । (पैरा 10, 11, 12 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2018] ए. आई. आर. 2018 (एन. ओ. सी.) एच. पी. 614 : **कांगरु राम** बनाम **श्रीराम** । 13

अपीली रिट अधिकारिता : 2019 की सिविल प्रकीर्ण याचिका संख्या 190.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश के 43 के अधीन प्रकीर्ण अपील ।

याची की ओर से श्री संजय कुमार

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री नीरज गुप्ता (वरिष्ठ अधिवक्ता) और अजीत जासवाल

आदेश

याची ने इस याचिका द्वारा शिमला के विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), न्यायालय संख्या 3 द्वारा 2018 के सिविल प्रकीर्ण आवेदन संख्या 9003752 में तारीख 18 मार्च, 2019 को पारित आदेश को चुनौती दी है, जिसके द्वारा वर्तमान याची द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 9 के अधीन वादग्रस्त भूमि का सीमांकन किए जाने और इस बात को अभिनिश्चित किए जाने कि क्या वादग्रस्त भूमि पर प्रतिवादियों द्वारा अतिक्रमण किया गया है या नहीं, के प्रयोजनार्थ स्थानीय आयुक्त नियुक्त किए जाने के लिए फाइल किए गए आवेदन को अस्वीकृत कर दिया गया है ।

2. अभिलोखों के आधार पर यह दर्शित होता है कि याची ने निषेधात्मक स्थाई व्यादेश के लिए वाद यह प्रार्थना करते हुए फाइल की कि प्रतिवादियों को वादग्रस्त भूमि के कब्जे में मध्यक्षेप करने से निषिद्ध किया जाए और उनको वादग्रस्त भूमि पर किए गए अतिक्रमण को हटाने के लिए निर्देशित करते हुए आज्ञापक व्यादेश की डिक्री पारित की जाए ।

3. अभिलेखों के आधार पर यह भी दर्शित होता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 9 के अधीन याची द्वारा वादग्रस्त भूमि के सीमांकन के लिए आवेदन अत्यधिक पहले अक्तूबर, 2015, जब वादी ने अपने साक्ष्य का नेतृत्व भी नहीं किया था, फाइल किया गया था । याची के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा इस आवेदन को यह मताभिव्यक्ति करते हुए लंबित रखा गया कि इस आवेदन में की गई प्रार्थना पर समुचित प्रक्रम पर विचार किया जाएगा, चूंकि यह आवेदन वर्तमान प्रक्रम पर समयपूर्व है ।

4. विद्वान् काउंसेल के अनुसार विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित पूर्ववर्ती आदेश को दृष्टि में रखते हुए इस प्रकार से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 9 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को तारीख 20 अप्रैल, 2016 को विद्वान् विचारण न्यायालय

द्वारा अस्वीकृत किया जाना दूषित है और विधि की दृष्टि में मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं है, क्योंकि जब याची द्वारा फाइल किया गया आवेदन विचारार्थ लंबित रखा गया था, तो विद्वान् विचारण न्यायालय पर यह बाध्यकारी था कि वे उसको मंजूर करते और वादग्रस्त भूमि का न्यायहित में सीमांकन कराते ।

5. इसके विपरीत प्रत्यर्थी के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने दलील दी कि यद्यपि यह अभिलेख का मामला है कि याची द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 9 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा लंबित रखा गया था, फिर भी विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा किसी भी पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर यह आश्वासन नहीं दिया गया कि इस आवेदन को मंजूर किया जाएगा । न्यायालय ने तारीख 20 अप्रैल, 2016 के आदेश द्वारा मात्र यह मताभिव्यक्ति की थी कि इस आवेदन पर समुचित समय आने पर विचार किया जाएगा और इसका समुचित न्यायनिर्णयन कर दिया जाएगा । उन्होंने आगे दलील दी कि विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा तारीख 18 मार्च, 2019, को पारित किए गए आदेश जिसको इस याचिका द्वारा आक्षेपित किया गया है, के परिशीलन से दर्शित होता है कि यह एक युक्तिसंगत और सकारण आदेश है और विद्वान् विचारण न्यायालय ने विधिमान्य और तर्कपूर्ण कारण समनुदेशित किए हैं कि याची द्वारा फाइल किए गए आवेदन को क्यों न मंजूर किया गया है । विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने आगे दलील दी कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने न्यायत: अभिनिर्धारित किया है कि यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि स्थानीय आयुक्त को कब्जे को विनिर्धारित किए जाने के प्रयोजनार्थ नियुक्त नहीं किया जा सकता और न ही यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह दोनों पक्षों में से किसी की भी तरफ से साक्ष्य एकत्रित करे । अत: उन्होंने याचिका को खारिज किए जाने की प्रार्थना की ।

6. उन्होंने आगे दलील दी कि अन्यथा भी मामले के तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 9 के

निबंधनों के अनुसार स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि याची और प्रत्यर्थियों के भूखंड के मध्य एक अन्य भूखंड भी स्थित है और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि पक्षों के मध्य विवाद सीमांकन का विवाद है ।

7. मैंने आक्षेपित आदेश और रिट याचिका के साथ संलग्न दस्तावेजों का परिशीलन किया । मैंने पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को भी विस्तारपूर्वक सुना ।

8. याची का प्रत्यर्थियों के विरुद्ध अभिकथन अतिक्रमण से संबंधित है । विधि का यह सुस्थापित सिद्धांत है कि वह जो अभिकथन करता है, ही उसे साबित करेगा । इसका अर्थ यह हुआ कि यदि याची/ वादी का यह पक्षकथन है कि वादग्रस्त भूमि पर प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों द्वारा अतिक्रमण कर लिया गया है, तो इसे अभिलेख पर तर्कपूर्ण साक्ष्य लाए जाने के द्वारा साबित करने का भार वादी पर है । चूंकि यह न्यायालय पहले भी अभिनिर्धारित कर चुकी है, सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 26, नियम 9 कोई ऐसा उपबंध नहीं है जिसका अवलंब लेने का अधिकार किसी भी पक्ष को अपने मामले की कमी को पूर्ण करने और अभिलेख पर ऐसे साक्ष्य को लाने का प्रयास करने के प्रयोजनार्थ किया जा सकता है, जिसको वह अन्यथा रूप से प्रस्तुत कर पाने में विफल रहा है ।

9. दलीलों के दौरान मामले के इस पहलू को याची के विद्वान् काउंसेल द्वारा विवादित नहीं किया जा सका कि किसी व्यक्ति का कोई भूखंड है और उससे उस भूखंड का याची द्वारा क्रय किया जा चुका है और वह भूखंड याची और प्रत्यर्थियों के भूखंड के मध्य स्थित है ।

10. जैसाकि मैंने पहले ही मताभिव्यक्त की है, याची का यह अभिकथन है कि प्रत्यर्थियों ने सरकारी भूमि पर अतिक्रमण कर लिया है, अत: याचियों का यह कर्तव्य है कि वे इस तथ्य को साबित करें और इस प्रयोजनार्थ किसी भी पक्ष की तरफ से साक्ष्य एकत्र किए जाने के लिए स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति न्यायालय द्वारा नहीं की जा सकती ।

11. अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है कि याची ने विवाद की विषयवस्तु, जो वादग्रस्त भूमि है, के सीमांकन के लिए राजस्व प्राधिकारियों की शरण ली थी और राजस्व प्राधिकारियों ने भूमि के सीमांकन के लिए याची के अनुरोध पर विचार नहीं किया ।

12. इन परिस्थितियों में यह न्यायालय विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश, जिसे इस याचिका में आक्षेपित किया गया है और जिसके द्वारा स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति के लिए याची द्वारा फाइल किया गया आवेदन खारिज कर दिया गया, में कोई अवैधता नहीं पाती । यह न्यायालय विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत है कि स्थानीय आयुक्त कब्जे के विनिर्धारण के लिए नियुक्त नहीं किया जा सकता और न ही यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह किसी भी पक्ष की ओर से साक्ष्य एकत्रित करे ।

13. इस प्रक्रम पर याची के विद्वान् काउंसेल ने **कांगरु राम** बनाम **श्रीराम**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के समकक्ष न्यायपीठ द्वारा पारित निर्णय का अवलंब लिया ।

14. मैंने इस न्यायालय की माननीय समकक्ष न्यायपीठ द्वारा पारित निर्णय का सतर्कतापूर्वक परिशीलन किया । मेरी सुविचारित राय में इस न्यायालय की माननीय समकक्ष न्यायपीठ द्वारा पारित निर्णय से याची को कोई सहायता नहीं मिलती क्योंकि यह निर्णय उस मामले के तथ्यों के आधार पर पारित किया गया था । वर्तमान मामले में तथ्यात्मक स्थिति सर्वथा भिन्न है । न तो याची ने यह प्रदर्शित करने के प्रयोजनार्थ अभिलेख पर कुछ भी प्रस्तुत किया है कि उसने वादग्रस्त भूमि के सीमांकन के लिए राजस्व प्राधिकारियों की शरण में जाने के द्वारा

---

[1] ए. आई. आर. 2018 (एन. ओ. सी.) एच. पी. 614.

तत्पर्तापूर्वक कार्रवाई की और राजस्व प्राधिकारियों द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई और पुन: अभिलेख के आधार पर यह ज्ञात होता है कि याची और प्रत्यर्थियों के मध्य विवाद सीमांकन विवाद नहीं है क्योंकि याची और प्रत्यर्थियों की संपत्तियों के मध्य किसी तृतीय पक्ष की भूमि स्थित है ।

15. यह न्यायालय ऊपरवर्णित निष्कर्षों को दृष्टि में रखते हुए वर्तमान याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाती, अत: यह याचिका तद्नुसार खारिज की जाती है । यदि कोई प्रकीर्ण आवेदन लंबित हो, तो वह भी निस्तारित माना जाएगा ।

याचिका खारिज की गई ।

शु.

संसद् के अधिनियम

भविष्य निधि अधिनियम, 1925

(1925 का अधिनियम संख्यांक 19)[1]

[27 अगस्त, 1925]

सरकारी भविष्य निधियों और अन्य भविष्य निधियों से संबंधित विधि संशोधित और समेकित करने के लिए अधिनियम

सरकारी भविष्य निधियों और अन्य भविष्य निधियों से संबंधित विधि को संशोधित और समेकित करना समीचीन है ;

अत: एतद्द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित किया जाता है :-

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ** - (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम भविष्य निधि अधिनियम, 1925 है ।

(2) इसका विस्तार [2][जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय] [3]*** संपूर्ण

---

[1] इस अधिनियम को 1936 के विनियम सं. 4 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा खोण्डमाल जिले में, 1936 के विनियम सं. 5 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा आंगुल जिले में तथा 1941 के मध्य प्रान्त तथा बरार अधिनियम सं. 4 द्वारा आंशिक रूप में बरार में भी प्रवृत्त घोषित किया गया है ; इसका आंशिक रूप में संशोधन उत्तर प्रदेश राज्य में 1953 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 19 द्वारा किया गया है ।

इस अधिनियम का 1962 के विनियम सं. 12 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा गोवा, दमन और दीव पर ; 1963 के विनियम सं. 7 की धारा 3 और अनुसूची 1 द्वारा (1-7-1963 से) पांडिचेरी पर ; 1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा (1-10-1965 से) दादरा और नागर हवेली पर और 1965 के विनियम सं. 8 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा (1-1-1967 से) लक्षद्वीप, मिनीकाय और अमीनदीवी द्वीप समूह पर विस्तार किया गया ।

[2] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "भाग ख राज्यों को छोड़ कर" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] भारतीय स्वतन्त्रता (केन्द्रीय अधिनियम तथा अध्यादेश अनुकूलन) आदेश, 1948 द्वारा "ब्रिटिश बलूचिस्तान सहित" शब्दों का लोप किया गया ।

भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख[1] को प्रवृत्त होगा, जिसे केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि कोई बात विषय या संदर्भ में विरुद्ध न हो, –

(क) "अनिवार्य निक्षेप" से किसी भविष्य निधि में ऐसा अभिदाय या निक्षेप अभिप्रेत है जो उस निधि के नियमों के अधीन, जीवन बीमा की किसी पालिसी के संबंध में प्रीमियम के संदाय [2][या किसी कुटुम्ब पेंशन निधि के संबंध में अभिदाय या प्रीमियम के संदाय] के प्रयोजन के अन्यथा, मांग पर तब तक प्रतिसंदेय नहीं है जब तक कोई विनिर्दिष्ट घटना न हो जाए और कोई अंशदान [3]**** तथा कोई ऐसा ब्याज या वृद्धि जो किसी ऐसे अभिदाय, निक्षेप या अंशदान पर निधि के नियमों के अधीन प्रोद्भूत हो जाती है और कोई ऐसा अभिदाय, निक्षेप, अंशदान, ब्याज या वृद्धि भी जो ऐसी किसी घटना होने के पश्चात् अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता के खाते में बाकी बच जाती है, इसके अंतर्गत है ;

(ख) "अंशदान" से कोई ऐसी रकम अभिप्रेत है जो किसी भविष्य निधि में [4][उस निधि का प्रबंध करने वाले किसी प्राधिकारी] द्वारा, उस निधि में [5][किसी खाते में जमा अभिदाय, या निक्षेप या अतिशेष] के परिवर्धन के तौर पर जमा की गई है ; और "अंशदायी भविष्य निधि" से ऐसी भविष्य निधि अभिप्रेत है जिसके नियम अंशदानों को जमा करने के लिए उपबंध करते हैं ;

---

[1] 1 अप्रैल, 1926; देखिए भारत का राजपत्र, 1925 भाग 1, पृ. 1182 ।

[2] 1930 के अधिनियम सं. 1 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

[3] 1930 के अधिनियम सं. 1 की धारा 2 द्वारा "ऐसे किसी अभिदाय या निक्षेप की बाबत जमा" शब्दों का लोप किया गया ।

[4] 1925 के अधिनियम सं. 28 की धारा 2 द्वारा "प्राधिकार जिसके अधीन निधि गठित की गई है" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[5] 1930 के अधिनियम सं. 1 की धारा 2 द्वारा "या, अभिदाय या निक्षेप की बाबत से अन्यथा" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(ग) "आश्रित" से किसी भविष्य निधि में अभिदाय या निक्षेप करने वाले किसी मृत व्यक्ति के निम्नलिखित नातेदार अभिप्रेत हैं, अर्थात् पत्नी, पति, माता-पिता, संतान, अवयस्क भाई, अविवाहित बहिन और मृत पुत्र की विधवा तथा संतान, और जहां अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता के माता-पिता में से कोई भी जीवित नहीं है वहां पितामह-पितामही ;

(घ) "सरकारी भविष्य निधि" से ऐसी कोई भविष्य निधि अभिप्रेत है जो रेल भविष्य निधि से भिन्न है और जो [1][सेक्रेटरी आफ स्टेट, केन्द्रीय सरकार, क्राउन रिप्रिजैंटेटिव या किसी राज्य सरकार] के प्राधिकार से, उस [2][सरकार की सेवा में व्यक्तियों] के अथवा [3][शैक्षिक संस्थाओं में नियोजित अथवा केवल शैक्षिक प्रयोजनों के लिए विद्यमान निकायों द्वारा नियोजित] किसी वर्ग के व्यक्तियों या किन्हीं वर्गों के व्यक्तियों के लिए बनाई गई है, [4][तथा इस अधिनियम में सरकार के प्रति निर्देशों का तद्नुसार अर्थ किया जाएगा];

(ङ) "भविष्य निधि" से ऐसी निधि अभिप्रेत है जिसमें किसी वर्ग या किन्हीं वर्गों के कर्मचारियों के अभिदाय या निक्षेप प्राप्त किए जाते हैं और उनके पृथक् खातों में रखे जाते हैं, और कोई अंशदान तथा कोई ऐसा ब्याज या वृद्धि जो ऐसे [5]*** अभिदाय, निक्षेप या अंशदान पर निधि के नियमों के अधीन प्रोद्भूत होती है इसके अंतर्गत है ;

[6][(च) "रेल प्रशासन" से अभिप्रेत है –

---

[1] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा "सरकार" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1942 के अधिनियम सं. 25 की धारा 3 और अनुसूची 2 द्वारा "इसके कर्मचारी" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1927 के अधिनियम सं. 7 की धारा 2 द्वारा "शिक्षा संस्थाओं में शिक्षकों के लिए" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा अंतःस्थापित ।

[5] 1930 के अधिनियम सं. 1 की धारा 2 द्वारा "ऐसे अभिदायों या निक्षेपों की बाबत जमा" शब्दों का लोप किया गया ।

[6] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा मूल खंड (च) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(i) [1][भारत के किसी भाग में] या तो [2][यूनाइटेड किंगडम की] पार्लियामेंट के किसी विशेष अधिनियम या किसी भारतीय विधि के अधीन अथवा सरकार के साथ की गई किसी संविदा के अधीन किसी रेल या ट्राम का प्रशासन करने वाली कोई कंपनी, या

(ii) [3][केन्द्रीय सरकार] द्वारा या किसी राज्य सरकार द्वारा प्रशासित किसी रेल या ट्राम का प्रबंधक,

और उपखंड (ii) में निर्दिष्ट किसी दशा में, यथास्थिति, [3][केन्द्रीय सरकार] या वह राज्य सरकार इसके अंतर्गत है ;]

(छ) "रेल भविष्य निधि" से किसी रेल प्रशासन के प्राधिकार से उसके किसी वर्ग या किन्हीं वर्गों के कर्मचारियों के लिए बनाई गई भविष्य निधि अभिप्रेत है ।

3. **अनिवार्य निक्षेप का संरक्षण** – (1) किसी सरकारी भविष्य निधि या रेल भविष्य निधि का कोई अनिवार्य निक्षेप किसी भी प्रकार से समनुदेशित या भारित नहीं किया जा सकेगा और अभिदायकर्ता अथवा निक्षेपकर्ता द्वारा उपगत किसी ऋण या दायित्व के संबंध में किसी सिविल, राजस्व या दांडिक न्यायालय की किसी डिक्री या आदेश के अधीन कुर्क नहीं किया जा सकेगा तथा न तो कोई शासकीय समनुदेशिती और न कोई रिसीवर ही, जो प्रांतीय दिवाला अधिनियम, 1920 (1920 का 5) के अधीन नियुक्त किया गया हो, किसी ऐसे अनिवार्य निक्षेप का हकदार होगा और न उसका उस पर कोई दावा ही होगा ।

(2) किसी ऐसी निधि में किसी अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता के खाते में उसकी मृत्यु के समय जमा कोई राशि, जो निधि के नियमों के अधीन उस अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता के किसी आश्रित को अथवा ऐसे व्यक्ति को संदेय है जो इस निमित्त संदाय प्राप्त करने के लिए विधि द्वारा प्राधिकृत किया जाए, इस अधिनियम द्वारा प्राधिकृत किसी

---

[1] 1951 के अधिनियम सं. 3 की धारा 3 और अनुसूची द्वारा "भाग क राज्य या भाग ग राज्य" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] विधि अनुकूलन आदेश, 1950 द्वारा अंत:स्थापित ।

[3] भारतीय स्वतंत्रता (केन्द्रीय अधिनियम और अध्यादेश अनुकूलन) आदेश, 1948 द्वारा "संघीय रेल प्राधिकरण" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

कटौती के अधीन रहते हुए और उस दशा को छोड़कर जब आश्रित अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता की विधवा या संतान है, इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व किए गए किसी समनुदेशन के अधीन, किसी समनुदेशिती के अधिकारों के भी अधीन रहते हुए, आश्रित में निहित होगी और मृत व्यक्ति द्वारा उपगत अथवा उस अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता की मृत्यु से पूर्व आश्रित द्वारा उपगत किसी ऋण या अन्य दायित्व से, यथापूर्वोक्त अधीन रहते हुए, मुक्त होगी ।

4. **प्रतिसंदायों के बारे में उपबंध** – (1) जब किसी सरकारी भविष्य निधि या रेल भविष्य निधि के नियमों के अधीन किसी अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता के खाते में जमा राशि या उसका अतिशेष इस अधिनियम द्वारा प्राधिकृत कोई कटौती करने के पश्चात्, संदेय हो गया है तब वह अधिकारी, जिसका कर्तव्य उसका संदाय करना है, यथास्थिति, उस राशि या अतिशेष का अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता को संदाय करेगा अथवा यदि उसकी मृत्यु हो गई तो –

(क) यदि वह राशि या अतिशेष अथवा उसका कोई भाग धारा 3 के उपबंधों के अधीन किसी आश्रित में निहित है तो उसका संदाय उस आश्रित को या ऐसे व्यक्ति को करेगा जो उसके निमित्त संदाय प्राप्त करने के लिए विधि द्वारा प्राधिकृत है ; या

(ख) यदि सम्पूर्ण राशि या अतिशेष पांच हजार रुपए से अधिक नहीं है तो उसका या उसके किसी भाग का संदाय, जो खंड (क) के अधीन संदेय नहीं है, निधि के नियमों के अधीन उसे प्राप्त करने के लिए नामनिर्देशित किसी व्यक्ति को अथवा यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार नामनिर्देशित नहीं है तो किसी ऐसे व्यक्ति को करेगा जो उसे प्राप्त करने के लिए, अन्यथा उसको हकदार प्रतीत हो ; या

(ग) यदि ऐसी राशि या अतिशेष या उसका कोई भाग खंड (क) या खंड (ख) के अधीन किसी व्यक्ति को संदेय नहीं है, तो उसका संदाय –

(i) निधि के नियमों के अधीन उसे प्राप्त करने के लिए नामनिर्देशित किसी व्यक्ति को, ऐसे व्यक्ति द्वारा मृत

व्यक्ति की संपदा का प्रबंध उसे देना साक्ष्यित करने वाला प्रोबेट या प्रशासन पत्र अथवा उत्तराधिकार प्रमाणपत्र अधिनियम, 1889[1] के अधीन या 1827 के मुम्बई विनियम 8 के अधीन दिया गया प्रमाणपत्र, जो उसके धारक को ऐसी राशि, अतिशेष या भाग का संदाय प्राप्त करने का हकदार बनाता हो, पेश किए जाने पर करेगा, या

(ii) यदि कोई नामनिर्देशित व्यक्ति नहीं है तो किसी ऐसे व्यक्ति को करेगा जो ऐसा प्रोबेट, प्रशासन पत्र या प्रमाणपत्र पेश करे :

परन्तु जहां अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता के खाते में जमा संपूर्ण राशि या उसका कोई भाग इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व किसी अन्य व्यक्ति को समनुदेशित किया गया है, और समनुदेशन की लिखित सूचना अधिकारी को समनुदेशिती से मिल चुकी है, वहां वह अधिकारी इस अधिनियम द्वारा प्राधिकृत कोई कटौती तथा अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता की विधवा या संतान को या उनके निमित्त खंड (क) के अधीन देय कोई संदाय करने के पश्चात् –

(i) यदि अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता, अथवा यदि उसकी मृत्यु हो गई है तो वह व्यक्ति, जिसको किसी विधिमान्य समनुदेशन के अभाव में वह राशि या अतिशेष उस उपधारा के अधीन संदेय होता, अपनी लिखित सहमति दे देता है, तो, यथास्थिति, उस राशि या भाग का या उसके अतिशेष का संदाय समनुदेशिती को करेगा, या

(ii) यदि ऐसी सहमति प्राप्त नहीं होती है, तो, यथास्थिति, उस राशि, भाग या अतिशेष का संदाय, उसे प्राप्त करने के हकदार व्यक्ति के बारे में किसी सक्षम सिविल न्यायालय के विनिश्चय तक के लिए रोक रखेगा ।

(2) उपधारा (1) द्वारा प्राधिकृत संदाय करने पर, यथास्थिति, सरकार या रेल प्रशासन, अभिकर्ता या निक्षेपकर्ता के खाते में जमा राशि में से इतनी राशि के संबंध में, जितनी इस प्रकार संदत्त की गई रकम के बराबर है समस्त दायित्व से पूर्ण रूप से उन्मोचित हो जाएगा ।

---

[1] अब भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39) देखिए ।

5. **नामनिर्देशितियों के अधिकार** – [1][(1) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में या किसी सरकारी भविष्य निधि या रेल भविष्य निधि के किसी अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता द्वारा उस निधि में अपने खाते में जमा राशि या उसके किसी भाग के, वसीयती या अन्य, किसी बयान में किसी बात के होते हुए भी, जहां निधि के नियमों के अनुसार सम्यक् रूप से किया गया कोई नामनिर्देशन, उस राशि के संदेय हो जाने के पूर्व, अथवा उस राशि के संदेय हो जाने पर उसका संदाय किए जाने के पूर्व अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता की मृत्यु पर ऐसी सम्पूर्ण राशि या उसके किसी भाग को प्राप्त करने का अधिकार किसी व्यक्ति को प्रदान करना तात्पर्यित करता है वहां उक्त व्यक्ति अन्य सभी व्यक्तियों का अपवर्जन करते हुए, उस अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता को यथापूर्वोक्त मृत्यु पर, यथास्थिति, ऐसी राशि या उसके किसी भाग को प्राप्त करने का हकदार हो जाएगा, किन्तु यदि –

(क) ऐसा नामनिर्देशन उसी प्रकार किए गए दूसरे नामनिर्देशन से किसी समय परिवर्तित किया गया है अथवा उन नियमों द्वारा विहित रीति से और प्राधिकारी को दी गई सूचना से अभिव्यक्ततः रद्द कर दिया गया है ; अथवा

(ख) ऐसा नामनिर्देशन किसी समय उसमें विनिर्दिष्ट किसी घटना के होने के कारण अविधिमान्य हो गया है,

तो वह व्यक्ति हकदार नहीं होगा, और यदि उक्त व्यक्ति, अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता से पहले मर जाता है तो नामनिर्देशन, जहां तक वह उक्त व्यक्ति को प्रदत्त अधिकार से संबंधित है, शून्य और प्रभावहीन हो जाएगा :

परन्तु जहां निधि के नियमों के अनुसार, नामनिर्देशन में मृत व्यक्ति के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा अधिकार प्रदान करने के लिए सम्यक् रूप से उपबंध किया गया है वहां ऐसा अधिकार, उक्त व्यक्ति की यथापूर्वोक्त मृत्यु हो जाने पर ऐसे अन्य व्यक्ति को संक्रंत हो जाएगा ।]

---

[1] 1946 के अधिनियम सं. 11 की धारा 2 द्वारा उपधारा के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(2) [1][भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39)] या 1827 के मुम्बई विनियम 8 में किसी बात के होते हुए भी किसी [2][व्यक्ति को जो यथापूर्वोक्त हकदार हो जाता है] ऐसी राशि या भाग का संदाय प्राप्त करने का हकदार बनाने वाला हक प्रमाणपत्र, यथास्थिति, उस अधिनियम या उस विनियम के अधीन [2][दिया जा सकेगा] और ऐसा प्रमाणपत्र मृत व्यक्ति की सम्पदा के लिए किसी अन्य व्यक्ति को प्रोबेट या प्रशासन पत्र दिए जाने से अविधिमान्य या अधिक्रान्त हुआ नहीं समझा जाएगा ।

[3][(3) भविष्य निधि (संशोधन) अधिनियम, 1946 (1946 का 11) की धारा 2 की उपधारा (1) द्वारा यथासंशोधित इस अधिनियम के उपबंध उस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से पूर्व किए गए ऐसे समस्त नामनिर्देशनों को भी लागू होंगे :

परंतु इस प्रकार संशोधित इस उपधारा के उपबंध किसी ऐसे मामले पर प्रभाव नहीं डालेंगे जिसमें उक्त तारीख से पूर्व, किन्हीं नियमों के अनुसार सम्यक्ततः किए गए किसी नामनिर्देशन के अनुसरण में किसी राशि का संदाय कर दिया गया है या निधि के नियमों के अधीन वह संदेय हो गई है ।]

6. **कटौतियां करने की शक्ति** – जब किसी सरकारी भविष्य निधि या रेल भविष्य निधि के, जो अंशदायी भविष्य निधि है, किसी अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता के खाते में जमा राशि संदेय हो जाती है तब, यदि [4][निधि के नियमों में उस निमित्त विनिर्दिष्ट] प्राधिकारी निदेश देता है तो उसमें से निम्नलिखित रकम काट ली जाएगी और, [5][यथास्थिति, सरकार या रेल प्रशासन] को संदत्त कर दी जाएगी –

---

[1] 1950 के अधिनियम सं. 35 की धारा 3 और अनुसूची 2 द्वारा "उत्तराधिकार प्रमाणपत्र अधिनियम, 1889" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1946 के अधिनियम सं. 11 की धारा 2 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1946 के अधिनियम सं. 11 की धारा 2 द्वारा अंतःस्थापित ।

[4] 1925 के अधिनियम सं. 28 की धारा 3 द्वारा "जिससे कि निधि गठित हुई है" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[5] 1925 के अधिनियम सं. 28 की धारा 3 द्वारा "उस प्राधिकरण" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(क) अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता द्वारा उपगत किसी दायित्व के अधीन [1][सरकार या रेल प्रशासन] को देय कोई रकम किन्तु जो किसी भी दशा में अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता के खाते में जमा किन्हीं अंशदानों की तथा किसी ऐसे ब्याज या वृद्धि की, जो ऐसे अंशदानों पर प्रोद्भूत हो गई है, कुल रकम से अधिक नहीं होगी ; या

(ख) जहां अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता को [2][उसके नियोजन से] किन्हीं ऐसे कारणों से, जो निधि के नियमों में इस निमित्त विनिर्दिष्ट हैं, पदच्युत कर दिया गया है अथवा जहां उसने ऐसे नियोजन को उसके प्रारंभ के पांच वर्ष के अन्दर त्याग दिया है, वहां किन्हीं ऐसे अंशदानों, ब्याज और वृद्धि की संपूर्ण रकम या उसका कोई भाग ।

[3][**6क. सेवानिवृत्ति के दो वर्ष के भीतर पूर्व अनुज्ञा के बिना वाणिज्यिक नियोजन ग्रहण करने वाले केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों की दशा में सरकारी अंशदानों को रोक लेना या उनकी वसूली** – (1) इस धारा में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो : –

(क) "केन्द्रीय सरकार का अधिकारी" से केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाई गई अंशदायी भविष्य निधि में कोई ऐसा अभिदायकर्ता या निक्षेपकर्ता अभिप्रेत है, जो अपनी सेवानिवृत्ति के ठीक पूर्व केन्द्रीय सेवा वर्ग 1 का सदस्य है, किन्तु किसी विनिर्दिष्ट अवधि के लिए किसी सेवा-संविदा के अधीन नियुक्त किया गया कोई अधिकारी इसके अंतर्गत नहीं है ;

(ख) "वाणिज्यिक नियोजन" से व्यापारिक, वाणिज्यिक, औद्योगिक, वित्तीय या वृत्तिक कारबार में लगी हुई किसी कंपनी, सहकारी सोसाइटी, फर्म या व्यष्टि के अधीन (अभिकर्ता की हैसियत सहित) किसी भी हैसियत में नियोजन अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं :–

---

[1] 1925 के अधिनियम सं. 28 की धारा 3 द्वारा "उस प्राधिकरण के नियोजन" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1925 के अधिनियम सं. 28 की धारा 3 द्वारा "उस प्राधिकरण के नियोजन" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1975 के अधिनियम सं. 46 की धारा 2 द्वारा (7-2-1977 से) अंत:स्थापित ।

(i) किसी कंपनी का निदेशक पद ;

(ii) किसी सहकारी सोसाइटी में अध्यक्ष, सभापति, प्रबंधक, सचिव, कोषपाल जैसे किसी भी नाम से ज्ञात किसी पद को, चाहे वह निर्वाचित हो या न हो, धारण करना ; और

(iii) ऐसे विषयों में सलाहकार या परामर्शी के तौर पर या तो स्वतंत्र रूप से या किसी फर्म के भागीदार के रूप में व्यवसाय प्रारम्भ करना, जिनकी बाबत –

(क) केन्द्रीय सरकार के अधिकारी के पास कोई वृत्तिक अर्हताएं नहीं हैं और वे विषय, जिनकी बाबत ऐसा व्यवसाय प्रारम्भ किया जाना है या चलाया जाता है, उसकी शासकीय जानकारी या अनुभव से संबद्ध हैं, या

(ख) केन्द्रीय सरकार के अधिकारी के पास वृत्तिक अर्हताएं हैं, किन्तु वे विषय, जिनकी बाबत ऐसा व्यवसाय प्रारंभ किया जाना है, ऐसे हैं जिनसे यह संभव है कि केन्द्रीय सरकार के अधीन उनके द्वारा धारित पदों के कारण उसके व्यवहारियों को नावाजिब फायदा हो ; या

(ग) केन्द्रीय सरकार के अधिकारी को ऐसे कार्य का भार ग्रहण करना है जिसमें केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों या अधिकारियों से संपर्क या संबंध अंतर्ग्रस्त है ;

किन्तु किसी ऐसे निगम या कंपनी में या उसके अधीन नियोजन, जो पूर्ण रूप से या पर्याप्त रूप से सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण में है अथवा किसी ऐसे निकाय में या उसके अधीन नियोजन, जो पूर्ण रूप से या पर्याप्त रूप से सरकार के नियंत्रण में है या उसके द्वारा वित्तपोषित किया जाता है, इसके अंतर्गत नहीं है ;

(ग) "सरकारी अंशदान" से भविष्य निधि (संशोधन) अधिनियम, 1975 के प्रारंभ होने के पश्चात्, केन्द्रीय सरकार द्वारा या किसी राज्य सरकार द्वारा या स्थानीय प्राधिकारी उधार अधिनियम, 1914 (1914 का 9) के अर्थ में किसी स्थानीय प्राधिकारी द्वारा ऐसे प्रारंभ के पश्चात् किसी अवधि की बाबत किए गए अंशदान अभिप्रेत हैं ;

(घ) "विहित" से केन्द्रीय सरकार द्वारा, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ।

(2) केन्द्रीय सरकार के किसी भी अधिकारी को, उस दशा में जब वह अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख से दो वर्ष की समाप्ति के पूर्व किसी समय, केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुज्ञा के बिना, वाणिज्यिक नियोजन ग्रहण करता है, किसी अंशदायी भविष्य निधि में उसके नाम में जमा किए गए, सरकारी अंशदानों के संबंध में कोई अधिकार नहीं होगा ।

स्पष्टीकरण 1 – इस उपधारा और उपधारा (7) के प्रयोजनों के लिए "सेवानिवृत्ति की तारीख" से, सेवानिवृत्ति के पश्चात् केन्द्रीय सरकार के अधीन उसी या किसी अन्य वर्ग 1 पद पर या किसी राज्य सरकार के अधीन वैसे ही किसी अन्य पद पर सेवा-विच्छेद के बिना पुनर्नियोजित केन्द्रीय सरकार के अधिकारी के संबंध में, वह तारीख अभिप्रेत होगी जिसको केन्द्रीय सरकार का ऐसा अधिकारी सरकारी सेवा में अन्ततः पुनर्नियोजित नहीं रहता ।

स्पष्टीकरण 2 – केन्द्रीय सरकार के किसी अधिकारी के बारे में, जिसे उसकी सेवानिवृत्ति-पूर्व छुट्टी के दौरान किसी विशिष्ट वाणिज्यिक नियोजन को ग्रहण करने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुज्ञा दी गई है, इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, यह समझा जाएगा कि उसने सेवानिवृत्ति के पश्चात् ऐसे नियोजन में अपने बने रहने के लिए केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुज्ञा प्राप्त कर ली है ।

(3) उपधारा (4) के उपबंधों के अधीन रहते हुए यह है कि केन्द्रीय सरकार के किसी अधिकारी द्वारा विहित प्ररूप में आवेदन किए जाने पर, केन्द्रीय सरकार लिखित आदेश द्वारा ऐसे अधिकारी को, उस आवेदन में विनिर्दिष्ट वाणिज्यिक नियोजन को ग्रहण करने के लिए, ऐसी शर्तों के अधीन, यदि कोई हों, जो वह आवश्यक समझे, अनुज्ञा दे सकती है, या ऐसे कारणों से, जो आदेश में अभिलिखित किए जाएंगे, अनुज्ञा देने से इनकार कर सकती है ।

(4) केन्द्रीय सरकार के किसी अधिकारी को कोई वाणिज्यिक नियोजन ग्रहण करने के लिए इस धारा के अधीन अनुज्ञा देने में या देने

से इनकार करने में, केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित बातों का ध्यान रखेगी, अर्थात् :–

(क) जिस नियोजन को ग्रहण करने का विचार है उसकी प्रकृति और नियोजक के पूर्ववृत्त ;

(ख) क्या उस नियोजन में जिसे ग्रहण करने का उसका विचार है, उसके कर्तव्य ऐसे हो सकते हैं जिनसे उसे सरकार का विरोध करना पड़े ;

(ग) क्या ऐसे अधिकारी ने सेवा के दौरान उस नियोजक के साथ, जिसके अधीन उसका नियोजन प्राप्त करने का विचार है, ऐसे कोई संव्यवहार किए थे जो इस संदेह के लिए युक्तियुक्त आधार हो सकते हैं कि ऐसे अधिकारी ने उस नियोजक के साथ पक्षपात किया था ;

(घ) कोई अन्य सुसंगत बातें जो विहित की जाएं ।

(5) यदि उपधारा (3) के अधीन आवेदन की प्राप्ति की तारीख से साठ दिन की अवधि के भीतर, केन्द्रीय सरकार ऐसी अनुज्ञा देने से इनकार नहीं करती है जिसके लिए आवेदन किया गया है, या आवेदक को ऐसे इनकार की संसूचना नहीं देती है, तो यह समझा जाएगा कि केन्द्रीय सरकार ने ऐसी अनुज्ञा दे दी है जिसके लिए आवेदन किया गया है ।

(6) यदि केन्द्रीय सरकार ऐसी अनुज्ञा किन्हीं शर्तों के अधीन देती है या ऐसी अनुज्ञा देने से इनकार करती है जिसके लिए आवेदन किया गया है तो आवेदक, उस आशय के केन्द्रीय सरकार के आदेश की प्राप्ति से तीस दिन के भीतर, किसी ऐसी शर्त या इनकार के विरुद्ध अभ्यावेदन कर सकता है, और केन्द्रीय सरकार उस पर ऐसे आदेश कर सकती है जो वह ठीक समझे :

परन्तु इस उपधारा के अधीन कोई आदेश जो ऐसी शर्त को रद्द करने या किन्हीं शर्तों के बिना ऐसी अनुज्ञा देने वाले आदेश से भिन्न है, अभ्यावेदन करने वाले व्यक्ति को प्रस्तावित आदेश के विरुद्ध कारण दर्शित करने का अवसर दिए बिना नहीं किया जाएगा ।

(7) यदि केन्द्रीय सरकार का कोई अधिकारी अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख से दो वर्ष की समाप्ति के पूर्व किसी समय, केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुज्ञा के बिना, कोई वाणिज्यिक नियोजन ग्रहण करता है या कोई ऐसी शर्त भंग करता है जिस पर कोई वाणिज्यिक नियोजन ग्रहण करने के लिए उसे इस धारा के अधीन अनुज्ञा दी गई है तो केन्द्रीय सरकार लिखित आदेश द्वारा और ऐसे कारणों से, जो उसमें अभिलिखित किए जाएंगे, यह घोषणा करने के लिए सक्षम होगी कि वह ऐसे सरकारी अंशदानों के, जो उस अधिकारी के संबंध में किए गए हों, इतने भाग का हकदार नहीं होगा जितना उस आदेश में विनिर्दिष्ट किया जाए, और यदि वह उसे प्राप्त कर चुका है तो यह निदेश देने के लिए सक्षम होगी कि वह सरकारी अंशदानों के उक्त भाग के बराबर रकम केन्द्रीय सरकार को वापस करे :

परन्तु कोई भी ऐसा आदेश, सम्बन्धित अधिकारी को ऐसी घोषणा या निदेश के विरुद्ध कारण दर्शित करने का अवसर दिए बिना, नहीं किया जाएगा :

परन्तु यह और कि इस उपधारा के अधीन कोई आदेश करने में, केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित बातों का ध्यान रखेगी, अर्थात् :–

(i) संबंधित अधिकारी की वित्तीय परिस्थिति ;

(ii) संबंधित अधिकारी द्वारा ग्रहण किए गए वाणिज्यिक नियोजन की प्रकृति और उससे उपलब्धियां ;

(iii) ऐसी अन्य सुसंगत बातें जो विहित की जाएं ।

(8) यदि कोई ऐसी रकम, जो उपधारा (7) के अधीन किसी आदेश द्वारा वापस की जानी अपेक्षित है, विहित अवधि के भीतर वापस नहीं की जाती हैं तो वह भू-राजस्व की बकाया के रूप में वसूल की जा सकेगी ।

(9) इस धारा के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा पारित प्रत्येक आदेश संबंधित अधिकारी को संसूचित किया जाएगा ।

(10) इस धारा के उपबंध, इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध

में या किसी अंशदायी भविष्य निधि को लागू नियमों में इसके प्रतिकूल किसी बात के होते हुए भी, प्रभावी होंगे ।

(11) इस धारा के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से पहले उसके अधीन की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।]

7. **सद्भावपूर्वक किए गए कार्यों के लिए संरक्षण** – इस अधिनियम के अधीन सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के संबंध में किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई वाद या अन्य विधिक कार्यवाही नहीं होगी ।

8. **अधिनियम को अन्य भविष्य निधियों को लागू करने की शक्ति** – [1][(1)] [2][समुचित सरकार,] राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, निदेश दे सकेगी कि [3][(धारा 6क को छोड़कर) इस अधिनियम के सब उपबन्ध,] स्थानीय प्राधिकारी उधार अधिनियम, 1914 (1914 का 9) के अर्थ में किसी स्थानीय प्राधिकारी द्वारा अपने कर्मचारियों के फायदे के लिए स्थापित किसी भविष्य निधि को लागू होंगे, और ऐसी घोषणा कर दिए जाने पर, यह अधिनियम तद्नुकूल ऐसे लागू होगा मानो ऐसी भविष्य निधि, सरकारी भविष्य निधि हो और ऐसा स्थानीय प्राधिकारी, सरकार हो ।

---

[1] 1930 के अधिनियम सं. 1 की धारा 3 द्वारा धारा 8 को उसकी उपधारा (1) के रूप में पुनःसंख्यांकित किया गया ।

[2] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा "स्थानीय सरकार" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1975 के अधिनियम सं. 46 की धारा 3 द्वारा (7-2-1977 से) अंतःस्थापित ।

[1][(2) [2][समुचित सरकार,] राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, निदेश दे सकेगी कि [3][(धारा 6क को छोड़कर) इस अधिनियम के सब उपबंध,] अनुसूची में विनिर्दिष्ट संस्थाओं में से किसी के अथवा ऐसी संस्थाओं के किसी समूह के कर्मचारियों के फायदे के लिए स्थापित किसी भविष्य निधि को लागू होंगे और ऐसी घोषणा कर दिए जाने पर, यह अधिनियम तद्नुकूल ऐसे लागू होगा मानो ऐसी भविष्य निधि, सरकारी भविष्य निधि हो और वह प्राधिकारी, जिसकी अभिरक्षा में निधि है, सरकार हो :

परन्तु धारा 6 इस प्रकार लागू होगी मानो उस धारा में निर्दिष्ट अंशदान करने वाला प्राधिकारी, सरकार हो ।

(3) [2][समुचित सरकार,] राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, अनुसूची में किसी ऐसी सार्वजनिक संस्था का नाम जोड़ सकेगी जिसे वह ठीक समझे और इस प्रकार जोड़ा जाना ऐसे प्रभावी होगा मानो वह इस अधिनियम द्वारा किया गया हो ।]

[4][(4) इस धारा में "समुचित सरकार" से अभिप्रेत है –

(क) किसी छावनी प्राधिकरण, किसी महापत्तन के लिए पत्तन प्राधिकरण और किसी ऐसी संस्था के संबंध में, जो या जिसके उद्देश्य केन्द्रीय सरकार की [5][संविधान] की सप्तम अनुसूची की सूची 1 के अंतर्गत प्रतीत हों, केन्द्रीय सरकार ; और

(ख) अन्य मामलों में राज्य सरकार ।

स्पष्टीकरण – सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21) के अधीन रजिस्ट्रीकृत किसी संस्था के संबंध में "राज्य सरकार" से उस राज्य की राज्य सरकार अभिप्रेत है जिसमें यह सोसाइटी रजिस्ट्रीकृत है ।]

---

[1] 1930 के अधिनियम सं. 1 की धारा 3 द्वारा जोड़ा गया ।

[2] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा "सपरिषद् गवर्नर जनरल" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1975 के अधिनियम सं. 46 की धारा 3 द्वारा (7-2-1977 से) अंतःस्थापित ।

[4] भारत शासन (भारतीय विधि अनुकूलन) आदेश, 1937 द्वारा अंतःस्थापित ।

[5] विधि अनुकूल आदेश, 1950 द्वारा "भारत शासन अधिनियम, 1935" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

9. **सैनिकों की सम्पदाओं के बारे में व्यावृत्तियां** – धारा 4 या धारा 5 की कोई बात किसी ऐसी संपदा के धन को लागू नहीं होगी जिसके प्रबंध के प्रयोजनों के संबंध में रेजीमैंटल डैट ऐक्ट, 1893 (56 और 57 विक्ट. सी. 5) लागू होता है ।

10. [**निरसन** ।] – निरसन अधिनियम, 1927 (1927 का 12) की धारा 2 और अनुसूची द्वारा निरसित ।

[1][**अनुसूची**

[धारा 8 की उपधारा (2) देखिए]

संस्थाओं की सूची

1. पास्चर इंस्टीट्यूट आफ इंडिया, कसौली ।
2. कलकत्ता सुधार अधिकरण ।
3. प्रतिपाल्य अधिकरण ।
4. भारतीय केन्द्रीय कपास समिति ।
5. रांची में मानसिक रोगों के लिए यूरोपियन अस्पताल के न्यासी ।
6. भारतीय महिलाओं को महिला चिकित्सा सहायता उपलब्ध करने के लिए राष्ट्रीय संस्था ।
7. कानून द्वारा स्थापित विश्वविद्यालय से संबद्ध कोई महाविद्यालय ।
[2]8. भारतीय कोयला श्रेणीकरण बोर्ड ।
9. लेडी मिन्टो इंडियन नर्सिंग एसोसिएशन ।
10. भारतीय रेडक्रास सोसाइटी ।
11. भारतीय लाख उपकर समिति ।

---

[1] 1930 के अधिनियम सं. 1 की धारा 4 द्वारा मद 1 से 7 से युक्त अनुसूची जोड़ी गई । 1927 के अधिनियम सं. 12 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा मूल अनुसूची का लोप किया गया ।

[2] अधिनियम की धारा 8(3) के अधीन अधिसूचनाओं द्वारा समय-समय पर 7 के पश्चात् मदें जोड़ी गईं ।

12. भारतीय रेडक्रास सोसाइटी की मद्रास राज्य शाखा ।

13. इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया ।

14. बिहार और उड़ीसा चिकित्सा परीक्षा बोर्ड ।

[1]* * *

16. चाय जिला उत्प्रवासी अधिनियम, 1932 (1932 का 22) के अधीन उत्प्रवासी श्रमिकों के नियंत्रण के लिए बनाई गई संस्था ।

17. मुम्बई फिल्म सैंसर बोर्ड ।

18. कलकत्ता विश्वविद्यालय ।

19. केन्द्रीय सिंचाई बोर्ड ।

20. भारतीय रिजर्व बैंक ।

[2]* * *

22. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ।

23. भारतीय आयुर्विज्ञान परिषद् ।

24. भारतीय काफी उपकर समिति ।

25. आंग्ल-भारतीय तथा यूरेपियन शिक्षा के लिए अंतर्राज्यिक बोर्ड ।

26. भारतीय अनुसंधान निधि संस्था ।

27. दिल्ली संयुक्त जल और मल बोर्ड ।

28. भारतीय क्षय रोग संस्था ।

29. कोयला खान भरण बोर्ड ।

30. भारतीय रेल स्लीपर पूल ग्रुप समिति ।

31. भारतीय काफी मंडी वृद्धि बोर्ड ।

---

[1] भारतीय स्वतंत्रता (केन्द्रीय अधिनियम और अध्यादेश का अनुकूलन) आदेश, 1948 द्वारा प्रविष्टि "15. पंजाब विश्वविद्यालय ।" का लोप किया गया ।

[2] भारतीय स्वतंत्रता (केन्द्रीय अधिनियम और अध्यादेश का अनुकूलन) आदेश, 1948 द्वारा प्रविष्टि "21. दि ट्रस्टीज आफ दि विक्टोरिया मैमोरियल पार्क रंगून" का लोप किया गया ।

32. कोयला खान बचाव स्टेशन समिति ।

33. भारतीय काफी बोर्ड ।

[1]* * * * * *

35. भारतीय रबड़ बोर्ड ।

36. भारतीय केन्द्रीय गन्ना समिति ।

37. अखिल भारतीय पशु प्रदर्शन समिति ।

38. कोयला खान श्रम कल्याण निधि ।

39. भारतीय नारियल समिति ।

40. भारतीय केन्द्रीय तंबाकू समिति ।

41. कर्मचारी राज्य बीमा निगम ।

42. भारतीय चाय अनुज्ञापन समिति ।

43. कोयला खान (संरक्षण और सुरक्षा) अधिनियम, 1952 (1952 का 12) के अधीन स्थापित कोयला बोर्ड ।

44. दिल्ली सड़क परिवहन प्राधिकारी, नई दिल्ली ।

45. केन्द्रीय चाय बोर्ड ।

46. भारतीय केन्द्रीय तिलहन समिति ।

47. औषधियों की देशी पद्धतियों के बारे में केन्द्रीय अनुसंधान संस्था, जामनगर ।

48. भारतीय मानक संस्थान, दिल्ली ।

49. सूती कपड़ा निधि समिति ।

50. देशबंधु कालेज, कालकाजी ।

51. दमोदर घाटी निगम ।

---

[1] भारतीय स्वतंत्रता (केन्द्रीय अधिनियम और अध्यादेश का अनुकूलन) आदेश, 1948 द्वारा प्रविष्टि "34. दी एन. डब्ल्यू. एफ. प्रोविन्शियल ब्रांच आफ दी इण्डियन रेडक्रास सोसाइटी" का लोप किया गया ।

52. केन्द्रीय रेशम बोर्ड ।

53. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली ।

54. खादी और ग्रामोद्योग आयोग ।

55. लारेंस स्कूल (सनावर) सोसाइटी ।

56. कलावती सरन शिशु अस्पताल, नई दिल्ली ।

57. श्री गुरु तेगबहादुर खालसा कालेज, दिल्ली ।

58. चाय बोर्ड, नई दिल्ली ।

59. लेडी श्रीराम महिला कालेज, नई दिल्ली ।

60. भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली ।

61. केन्द्रीय कर्मकार शिक्षा बोर्ड ।

62. तेल और प्राकृतिक गैस आयोग ।

63. योजना तथा वास्तुकला स्कूल, नई दिल्ली ।

64. कर्मचारी भविष्य निधि स्कीम, 1952 के अधीन स्थापित भविष्य निधि के प्रशासन के लिए केन्द्रीय न्यासी बोर्ड ।

65. गुजरात राज्य सड़क परिवहन निगम ।

66. राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 (1951 का 63) के अधीन (निगमित) स्थापित उत्तर प्रदेश वित्तीय निगम ।

67. इंडियन इंस्टीट्यूट आफ टैक्नालोजी, मुम्बई ।

68. भारतीय नर्सिंग काउंसिल ।

69. राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 (1951 का 63) के अधीन (निगमित) स्थापित गुजरात राज्य वित्तीय निगम ।

70. इंडियन इंस्टीट्यूट आफ टैक्नालोजी, मद्रास ।

71. राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 (1951 का 63) के अधीन निगमित राजस्थान वित्तीय निगम ।

72. एयर इंडिया इन्टरनेशनल कार्पोरेशन ।

73. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली ।

74. पन्ना लाल गिरधारी लाल डी.ए.वी. कालेज, नई दिल्ली ।

75. दिल्ली सामाजिक कार्य स्कूल, दिल्ली ।

76. अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान ।

77. कोयला खान भविष्य निधि स्कीम, 1948 के अधीन स्थापित भविष्य निधि के प्रबंध के लिए न्यासी बोर्ड ।

78. जानकी देवी महाविद्यालय, नई दिल्ली ।

79. भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली ।

80. राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् ।

81. राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड ।

82. आयुर्वेदिक स्नातकोत्तर प्रशिक्षण केन्द्र, जामनगर ।

83. भारतीय विनिधान केन्द्र, नई दिल्ली ।

84. इंडियन एयर लाइंस कार्पोरेशन ।

85. इंडियन इंस्टीट्यूट आफ टैक्नालोजी, कानपुर ।

86. डॉक कर्मकार (नियोजन का विनियमन) अधिनियम, 1948 (1948 का 9) के अधीन स्थापित विशाखापत्तनम डॉक श्रम बोर्ड ।

87. केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड ।

88. राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 (1951 का 63) के अधीन निगमित उड़ीसा राज्य वित्तीय निगम ।

89. संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली ।

90. आर्थिक विकास संस्थान, दिल्ली ।

91. दिल्ली वक्फ बोर्ड ।

92. अनुप्रयुक्त जनशक्ति अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ।

93. भारतीय विधि संस्थान ।

94. इंडियन इंस्टीट्यूट आफ टैक्नालोजी, दिल्ली ।

95. दयाल सिंह कालेज, नई दिल्ली ।

96. प्रमिला कालेज, दिल्ली ।

97. सनातन धर्म कालेज, नई दिल्ली ।

98. भारतीय फार्मेसी परिषद् ।

99. भारतीय प्रबंध संस्थान, कलकत्ता ।

100. सैनिक स्कूल सोसाइटी ।

101. सालार जंग संग्रहालय बोर्ड, हैदराबाद ।

102. ललित कला अकादमी, नई दिल्ली ।

103. राज्य वित्तीय निगम अधिनियम, 1951 (1951 का 63) के अधीन निगमित मध्य प्रदेश वित्तीय निगम ।

104. केन्द्रीय गोसंवर्धन परिषद् ।

105. भारतीय स्टेट बैंक अधिनियम, 1955 (1955 का 23) द्वारा गठित भारतीय स्टेट बैंक ।

106. अखिल भारतीय मानसिक स्वास्थ्य संस्थान, बंगलौर ।

107. भारतीय विदेश व्यापार संस्थान, नई दिल्ली ।

108. दिल्ली पुस्तकालय बोर्ड, दिल्ली ।

109. राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली ।

110. अखिल भारतीय वाक् और श्रवण संस्थान, मैसूर ।

111. भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता ।

112. भारतीय प्रैस परिषद् ।

113. राष्ट्रीय शैक्षिक, अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ।

114. भारतीय जनसंचार-संस्थान ।

115. राष्ट्रीय औद्योगिक इंजीनियरी प्रशिक्षण संस्थान, मुम्बई ।

116. कोचीन पत्तन न्यास ।

117. विशाखापत्तनम पत्तन न्यास ।

118. कांदला पत्तन न्यास ।

119. मोरमुगाव पत्तन न्यास ।

120. प्रदीप पत्तन न्यास ।

121. नेहरू स्मारक म्यूजियम और लाइब्रेरी, नई दिल्ली ।

122. नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली ।

123. भारतीय निर्यात निरीक्षण परिषद् ।

124. निर्यात निरीक्षण अभिकरण, मुम्बई ।

125. निर्यात निरीक्षण अभिकरण, दिल्ली ।

126. निर्यात निरीक्षण अभिकरण, कलकत्ता ।

127. निर्यात निरीक्षण अभिकरण, मद्रास ।

128. निर्यात निरीक्षण अभिकरण, कोचीन ।

129. ढलाई एवं गढ़ाई तकनीक का राष्ट्रीय संस्थान, रांची ।

130. भारतीय यूनिट ट्रस्ट अधिनियम, 1963 (1963 का 52) के अधीन स्थापित भारतीय यूनिट ट्रस्ट ।

131. भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली ।

132. नेशनल इंस्टीट्यूट आफ बैंकिंग मैनेजमेंट, मुम्बई ।

133. स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान, चंडीगढ़ ।

134. इलायची अधिनियम, 1965 (1965 का 42) के अधीन स्थापित इलायची बोर्ड ।

135. विक्टोरिया मैमोरियल हाल, कलकत्ता ।

136. केन्द्रीय जन सहयोग अनुसंधान तथा प्रशिक्षण संस्थान, नई दिल्ली ।

137. डॉक कर्मकार (नियोजन का विनियमन) अधिनियम, 1948 (1948 का 9) के अधीन मोरमुगाव डॉक श्रम बोर्ड ।

138. डॉक कर्मकार (नियोजन का विनियमन) अधिनियम, 1948 (1948 का 9) के अधीन स्थापित कोचीन डॉक श्रम बोर्ड ।

139. सांविधानिक तथा संसदीय अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली ।

140. रक्षा अध्ययन और विश्लेषण संस्थान, नई दिल्ली ।

141. नीति अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली ।

142. लौह अयस्क बोर्ड ।

143. भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली ।

144. भारतीय खनिज विद्यापीठ, धनबाद ।

145. नाविक भविष्य निधि संगठन ।

146. रूरल इलैक्ट्रीफिकेशन कारपोरेशन लिमिटेड ।

147. भारतीय भुचुंबकत्व संस्थान, मुम्बई ।

148. केन्द्रीय विद्यालय संगठन ।

149. बालभवन सोसाइटी (इंडिया) ।

150. पावर इंजीनियर्स ट्रेनिंग सोसाइटी ।

151. राष्ट्रीय जन विज्ञान संस्थान ।

152. रमण रिसर्च इंस्टीट्यूट, बंगलौर ।

153. राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली ।

154. राष्ट्रीय श्रम संस्थान ।

155. राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम, नई दिल्ली ।

156. राष्ट्रीय जल विकास अभिकरण, नई दिल्ली ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय – डा. एस. सी. खरे – 1996	273	115	29.00
2.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) – विधि साहित्य प्रकाशन – 2000	209	225	57.00
3.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	290.00
4.	मानव अधिकार – डा. शिवदत्त शर्मा – 2006	340	120	60.00
5.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. विधि शब्दावली	सातवां संस्करण, 2015	कीमत रु. 375/-
2. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2019	कीमत रु. 1,900/-
3. भारत का संविधान (सिंधी भाषा में)	1998	कीमत रु. 45/-
4. बहुभाषी संविधान शब्दावली	1986	कीमत रु. 12/-

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/ product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in